पराजय

प्रभावती भटनागर

1960

प्रस्तावना

हिन्दी-प्रेमी-समाज की सेवा में मैं आज अपनी दूसरी पुस्तक 'पराजय' लेकर उपस्थित हो रही हूँ। इससे पहिले मैंने 'विवाह-मन्दिर' पुस्तक आप लोगों को भेंट की थी जो बँगला-भाषा के एक उपन्यास का अनुवाद था। उसके प्रकाशित होने पर लोगो ने उसे बहुत पसन्द किया और मुझे उत्साहित किया कि मैं और भी पुस्तकें (मौलिक) लिखूँ। उन्हीं लोगों के अनुरोध से मैंने यह पुस्तक लिखने का साहस किया है और यथाशक्ति पुस्तक को सुन्दर बनाने का यत्न किया है। पुस्तक कैसी हुई, इसका निर्णय आप लोगों पर निर्भर है।

प्रस्तुत पुस्तक यद्यपि मौलिक है, परन्तु इसमें भी मैंने एक पुस्तक के प्लाट का थोड़ा आधार लिया है। पुस्तक का और पुस्तक के लेखक का मुझे नाम याद नहीं रहा ; क्योंकि बहुत दिन हुए मैंने वह पुस्तक पढ़ी थी और पढ़ते समय यह ध्यान न था कि फिर कभी इसकी आवश्यकता होगी। अतः उस पुस्तक की छायामात्र स्मृति के आधार पर ही मैंने यह पुस्तक पूर्ण की है।

आत्म-सम्मान और न्याय प्राप्त करने के लिए सरला अपने कर्त्तव्य पर सुदृढ़ रहती है। श्वशुर, सास और पति, वह किसी से भी अपने प्रति दया तथा कृपा की प्रार्थना नहीं करती; क्योंकि वह निर्दोष है। यदि वह सुन्दरी नहीं है तो यह उसका अपराध

नहीं है। उसमें अनन्त गुण रहते भी यदि पतिदेव केवल रूप-लिप्सा के कारण उससे विरक्त हैं तो वह उनसे निष्फल प्रेम-भिक्षा माँगकर अपने को नीच नहीं बनाना चाहती। जो उसको न्याय प्राप्त है, यदि वह उसे नहीं मिल सका तो वह निष्काम चित्त से उन लोगों के प्रति अपना कर्त्तव्य किये जाती है। वह लोग उसके बदले में उसके साथ कैसा बर्त्ताव करते हैं, इसकी परवा नहीं करती। भारत की देवियों के सम्मुख प्रथम बार यह नया आदर्श उपस्थित होता है और यही आदर्श उनको ऐसी स्वतन्त्रता के सम्मुख लाता है जहाँ पर सतीत्व की निष्काम सेवा के कारण विजय होती है। सरला की निष्काम सेवा-परायणता और सहनशक्ति के सम्मुख अन्त में उसी की जय होती है और विमुख राजेन्द्र उसके गुणों पर मुग्ध होकर अपनी भूल समझ लेता है तथा अपनी 'पराजय' स्वीकार करता है। यहीं पर पुस्तक समाप्त हो जाती है। मैंने सरला के चरित्र को यथासम्भव आदर्श बनाने की चेष्टा की है। मैं आशा करती हूँ कि मेरी अन्य विदुषी बहिनें भी उसके चरित्र पर एक दृष्टि डालकर देखेंगी कि यह स्वाभाविक हुआ है या नहीं। यदि इसमें उन लोगों को कुछ भूल दिखाई पड़े तो कृपा करके मुझे सूचित करेंगी। अस्तु—

विंगफ़ील्ड-पार्क,
लखनऊ. } प्रभावती भटनागर

पराजय

पहला परिच्छेद

भीषण गर्मी से छटपट करते-करते दोपहर की लम्बी निद्रा के बाद जब राजेन्द्र की आँख खुली और उसने मुँह-हाथ धोकर घड़ी की ओर देखा, उस समय तक भी केवल ३ ही बजे थे।

चारों ओर कडी धूप फैल रही थी। राह-बाट तनिक भी ठंडा न पड़ा था। फुटपाथ के ऊपर एक सिरीष का वृक्ष लगा हुआ था जिसकी लम्बी-लम्बी डालों में पीले फूल लगे हुए धूप की तेजी से झुलसे हुए संसार को नाम-मात्र की शीतलता प्रदान कर रहे थे और इन्हीं फूलों पर थोड़े से भौंरे और मधुमक्खियो की गुञ्जार सवेरे से अब तक एक-सी चल रही थी।

एक पोस्टमैन आकर कुछ चिट्ठियाँ दे गया। राजेन्द्र ने व्यग्र भाव से एक चिट्ठी खोलकर पढ़ी और फिर सामने ब्रैकेट पर रक्खा हुई घड़ी की ओर दृष्टि की। तब भी केवल ३-बज-कर कुछ मिनट ही आये हुए थे।

वह फिर चिट्ठी पढ़ने लगा। यह उसके पिता का पत्र था। लिखा था—

चिरंजीव राजेन्द्र,

तुम्हारे बड़े मामा ने अपने लड़के ज्ञानेन्द्र के विवाह के उपलक्ष में तुम्हे बुलाया है और तुम्हे बनारस जाने को बहुत ही अनुरोध किया है। अतः तुम बनारस होते हुए तब यहाँ आना और वहाँ तुम ५ दिन से अधिक देर न करना। और, यदि इससे पहले ही आ सको तो और भी उत्तम हो। शेष कुशल है।

आशीर्वादक तुम्हारा पिता

जगदीशकुमार.

राजेन्द्र के नाना पहले आगरे में रहते थे; परन्तु नौकरी के कारण उन्हें बनारस आना पड़ा था। यह शहर उन्हें इतना पसन्द आया कि पेंशन हो जाने पर भी शिवधाम काशी छोड़ने को उनका जी न चाहा। वह पेंशन लेकर और एक मकान बनवाकर वहीं रहने लगे थे। उनके बड़े लड़के कालीकिंकर ने उनकी जीवित अवस्था में ही वकालत पास करके बनारस में ही प्रैक्टिस आरम्भ कर दी थी और वह इस समय वहाँ के एक प्रसिद्ध वकील गिने जाते थे। यह उन्हीं के छोटे लड़के ज्ञानेन्द्र के विवाह का निमन्त्रणपत्र था।

राजेन्द्र का कालिज गर्मी की छुट्टियों के कारण दो दिन

पहले ही बन्द हो गया था ; परन्तु वह ज्ञानेन्द्र के अनुरोध में पड़कर ही अभी तक अपने घर नहीं गया था।

राजेन्द्र के पिता जगदीश बाबू एक बहुत बड़े जमींदार हैं। वे अत्यन्त गम्भीर प्रकृति के मनुष्य हैं। राजेन्द्र और उसका छोटा भाई भूपेन्द्र दोनों ही जितनी भक्ति और श्रद्धा पिता की करते थे, उससे दूना भय करते थे। पिता की आज्ञा पाने की प्रतीक्षा में ही राजेन्द्र अभी तक यहाँ ठहरा हुआ था। यह पत्र पाकर राजेन्द्र का हृदय प्रसन्नता से नाच उठा।

पास के कमरे से ज्ञानेन्द्र ने आकर पूछा, "राजेन्द्र ! तुम्हारे पिता की कोई चिट्ठी आज भी आई या नहीं ?"

"हाँ ! यह आ गई।"

"आ गई ? कहाँ है, देखूँ।"

राजेन्द्र ने लिफ़ाफा उठाकर ज्ञानेन्द्र के हाथ में रख दिया। उसे पढ़कर ज्ञानेन्द्र ने एक सन्तोष की साँस ली और बोला, "बस, अब देर करने की क्या आवश्यकता है। चलो आज ही चल दिया जाय।"

राजेन्द्र ने जरा मुस्कराकर रहस्य-भरे स्वर से कहा, "ओह ! अब और देर सही नहीं जाती, क्यों ?" ज्ञान का मुख लज्जा से लाल हो गया। उसने झेंपकर कहा, "नहीं भाई, सो नहीं.........।" कुछ रुककर ज्ञान ने फिर कहा, "तो बताओ आज ही चलते हो न ? परन्तु यह स्मरण रखना शाम

के साढ़े सात बजे ही ट्रेन जाती है और इस समय साढ़े तीन बजे हैं।" राजेन्द्र ने हँसकर कहा, "अच्छा।"

ज्ञानेन्द्र—वाह, अच्छा क्या? तैयारी करो। देर हो गई तो ट्रेन न मिलेगी, यह कहे देता हूँ।

राजेन्द्र ने एक दूसरी चिट्ठी पढ़ते-पढ़ते कहा, "घड़ी देखो भाई घड़ी। अभी तो केवल साढ़े तीन ही बजे हैं। तुम्हारी ट्रेन फ़ेल नहीं हो सकेगी। धैर्य रक्खो।" राजेन्द्र की हँसी देखकर ज्ञान सचमुच अप्रतिभ हो गया। बोला, "मैं तो केवल तुमसे पूछ रहा हूँ कि यदि आज ही चलो तो मैं विनय से भी कह दूँ।"

राजेन्द्र—अच्छा जाओ। कह आओ।

राजेन्द्र ज्ञानेन्द्र से तीन-चार महीने बड़ा होगा। यह लोग बचपन से ही एक दूसरे का नाम लेकर पुकारते आये हैं। इस समय भी दोनों एक ही कालिज में पढ़ रहे हैं। ज्ञानेन्द्र विवाह-विषय में राजेन्द्र से कुछ आगे बढ़ जाने पर भी कालिज की पढ़ाई मे उससे बहुत पीछे है। इसी से ज्ञानेन्द्र के पिता ने उसे राजेन्द्र की देखरेख में उसी के पास भेज दिया था।

ज्ञानेन्द्र कभी-कभी विचारा करता था कि जिन्हें लोग मेधावी छात्र कहते हैं उनके पास "पास" नामी स्वर्ग की सीढ़ी कौन-सी है? वह भी तो और सब लड़को की भाँति ही

पढ़ता-लिखता है, तब भी वह उन छात्रों की श्रेणी में क्यो नहीं गिना जाता ?

यह सब सोचते हुए भी वह राजेन्द्र के कार्त्तिक के सादृश्य रूप और बृहस्पति के समान गुण को अस्वीकार नहीं कर सकता था।

ज्ञानेन्द्र राजेन्द्र से बहुत प्रेम करता था।

ज्ञान के चले जाने पर राजेन्द्र बाहर आकर बरामदे मे खड़ा हो गया और सामने के लम्बे रास्ते के धूप से तपे हुए मोड़ को देखने लगा। इस समय भी सड़क पर काफ़ी भीड़ थी। माल से भरी बैलगाड़ियाँ व भैसागाड़ियाँ क़तार बाँधकर चली जा रही थीं। गर्मी और परिश्रम से थके हुए बेचारे निरीह पशु नेत्र बन्द किये शिथिल मन्द गति से बोझ खींच रहे थे।

आध घंटे बाद चाय पीने के लिए कमरे मे आकर राजेन्द्र ने देखा कि ज्ञानेन्द्र का चाय का प्याला लगभग शेष हो चुका है। राजेन्द्र को देखते ही ज्ञान ने कहा, "तुम्हारे-जैसा विचित्र मनुष्य मैंने आज तक कोई दूसरा नहीं देखा।"

राजेन्द्र ने हँसकर कहा, "अच्छा, तब किसकी तरह का देखा है ? कैसी सूरत का ?"

ज्ञानेन्द्र भी हँस पड़ा। बोला, "कैसा आश्चर्य है ! तुम्हारे-जैसे उजड्ड लड़कों को भी परीक्षक लोग पास कर देते हैं !"

राजेन्द्र—और तुम्हारे-जैसे पंडितों को फ़ेल कर देते हैं। कैसा अन्याय है! कितना पक्षपात है! क्यों

ज्ञान और कुछ न बोल कर चुपचाप चाय पीने लगा और राजेन्द्र धीरे-धीरे अपनी चीज़-वस्तुएँ सूटकेस और ट्रंक में भरने लगा।

चाय पीकर ज्ञानेन्द्र अपने दो-एक मित्रों से भेट करने बाहर चला गया और जब वापस लौटा तो एकदम एक भाड़े की गाड़ी साथ लेकर ही लौटा। चार-पाँच दिन बाद ही ज्ञान का विवाह है। घर पर सब ठीकठाक हो चुका है। वहाँ से कई चिट्ठियाँ उसे अविलम्ब घर आने के विषय में आ चुकी हैं। इसके सिवा स्वयं उसे भी कुछ कम जल्दी नहीं थी।

गाड़ी देखकर राजेन्द्र ने क्रोध से कहा, "अभी से गाड़ी लाने की क्या ज़रूरत थी? अभी तो दो घंटे बाक़ी हैं। रात का खाना-पीना शेष करके ही तो चलोगे।"

ज्ञानेन्द्र कुछ उत्तर न देकर नौकर की सहायता से गाड़ी की छत पर अपने बक्स-बिस्तरे रखवाने लगा।

कालिज बन्द होते ही सब विदेशी छात्र अपने-अपने घर चले गये थे। केवल यही दोनो रह गये थे और जिस आशा में यह लोग अब तक ठहरे हुए थे, उसके पूर्ण हो जाने पर ज्ञानेन्द्र को एक मिनट भी काटना कठिन हो रहा था।

मेस का नौकर आज बड़ी तत्परता से इनकी प्रत्येक आज्ञा

पालन कर रहा है; क्योंकि चलते समय बाबू लोगो से कुछ बखशीस मिलने की आशा है। ब्राह्मण महाराज भी इसी आशा में हैं। यथासमय थोड़ा बहुत किसी प्रकार खा-पीकर राजेन्द्र और ज्ञानेन्द्र उसी भाड़े की गाड़ी में जा बैठे।

घड़बड़ करती हुई गाड़ी लखनऊ-स्टेशन की ओर चल पड़ी। ज्ञानेन्द्र बार-बार गाड़ीवान से कहता था, "ज़रा और तेज़ी से गाड़ी चलाओ। कहीं ट्रेन न फेल हो जाय।" परन्तु गाड़ीवान के मुख से 'हट हट' शब्द के अतिरिक्त गाड़ी की गति में कोई परिवर्तन नहीं हुआ और ट्रेन भी फ़ेल नहीं हुई। ठीक समय पर यह लोग स्टेशन पहुँच गये। ज्ञानेन्द्र को टिकट लाने के लिए भेजकर राजेन्द्र प्लेटफार्म पर टहलने लगा। ट्रेन के सीटी देने पर दोनों गाड़ी में जाकर बैठ गये।

ट्रेन के चल देने पर राजेन्द्र ने हाथ का टाइमटेबिल बेंच पर रखकर रात को सोने का प्रबन्ध करने की इच्छा से इधर-उधर देखकर दूसरी बर्थ पर बिस्तर लगाया। पास का दूसरा कम्पार्टमेंट स्त्रियों का था। वहाँ से एक छोटे बच्चे के रोने की आवाज़ आ रही थी। कुछ देर अपेक्षा करने पर भी जब बच्चे का रोना न थमा तो राजेन्द्र ने विरक्त होकर कहा, "ना, मालूम होता है आज की रात बैठे-बैठे ही काटनी होगी। सोना नहीं हो सकता।"

ज्ञानेन्द्र ने कुछ उत्तर न दिया। हँसकर अपने सोने की जगह झाड़-पोंछकर ठीक करने लगा। ज्ञानेन्द्र राजेन्द्र की अपेक्षा कुछ अधिक गृही था। थोड़े से कष्ट में विरक्त होने का उसको अभ्यास न था। तीन-चार स्टेशन बाद ही ज्ञान ने देखा कि नींद न आने से दुखी राजेन्द्र खूब नींद में मग्न है।

दूमरा परिच्छेद

बनारस में मामा के यहाँ पहुँचकर ममेरे भाइयों और न्योते मे आये हुए बन्धु-बान्धवों के साथ ज्ञानेन्द्र के विवाह के उपलक्ष्य मे खूब धूमधाम और उत्सव मनाने के पश्चात् विवाह में आये हुए मेहमान लोग धीरे-धीरे बिदा होने लगे। उनके जाने से कोलाहलपूर्ण गृह ज्यों-ज्यों शान्त होने लगा, त्यों-त्यों गर्मी की भीपणता और भी अधिक जान पड़ने लगी।

दोपहर का सूर्य जैसे एकबारगी अंगारे बरसा रहा था। असह्य गर्मी की जलन से व्याकुल होकर राजेन्द्र घर छोड़कर किसी ठंडे स्थान के लोभ से घर के पिछवाड़ेवाले बग़ीचे की ओर चला गया।

वहाँ बकुल और कदम के वृक्षों के झुंड के नीचे एक स्वच्छ स्थान देखकर राजेन्द्र तकिया रख और हाथ में पंखा लेकर लेट गया और एक अंग्रेज़ी का उपन्यास पढ़ने लगा।

राजेन्द्र को यह मालूम न था कि यह बग़ीचा केवल स्त्रियो

के लिए ही है। वह यहाँ प्रथम बार ही आया था। ऐसा अच्छा स्थान पाकर भला स्त्रियाँ क्यो चूकनेवाली थीं। वह लोग बिना रोक-टोक चाहे जिस समय यहाँ आ बैठा करती थीं। इसलिए इस घर के पुरुष इधर बहुत कम आते थे।

परम तृप्त होकर राजेन्द्र ने निद्रा का आवाहन करना आरम्भ किया। नेत्र बन्द करके उसने हाथ का उपन्यास पास के सूखे फूल-पत्तो के ढेर पर रख दिया। ठीक उसी समय चूड़ियों का शब्द और स्त्रियों के गले का मन्दस्वर सुनकर राजेन्द्र की तन्द्रा भङ्ग हो गई। उसने मुख ऊपर करके देखा कि सामने थोड़ी दूर पर तीन युवतियाँ बैठी हुई फूल बीन रही हैं। उसमें से एक तो ज्ञानेन्द्र के बड़े भाई योगेन्द्र की पत्नी शान्ति थी और दूसरी बहन विमला और तीसरी इन दोनों की आड़ में बैठी थी, इससे ठीक न देखा गया।

राजेन्द्र बड़ी कठिनाई में पड़ा। मालूम होता है स्त्रियों ने तो इसे अभी तक नहीं देखा था; परन्तु वह स्त्रियों को देखकर अब वहाँ कैसे लेटा रह सकता है। परन्तु कठिनता तो यह है कि अब वह इन स्त्रियों के सामने उठकर जा भी नहीं सकता। मन ही मन वह इन स्त्रियों के ऊपर बहुत चिढ़ा।

सहसा उच्चस्वर और कोमलकठ से हँसकर तीसरी किशोरी ने एक मुट्ठी बकुल के फूल लेकर शान्ति की ओर फेंके। फूल सबके सब राजेन्द्र के सिर, मुख और शरीर पर-झड़

पड़े। राजेन्द्र ने जल्दी से उठकर कहा, "वाह, भाभी, वाह।"

चकित होकर शान्ति ने माथे का कपड़ा ठीक करके उधर देखा। उस तीसरी अपरिचिता ने भी लज्जित होकर माथा नीचा कर लिया और शान्ति के पीछे जा छिपी। राजेन्द्र की मुखदृष्टि की एक ही झलक ने उसके सुन्दर गुलाबी मुख-मंडल को और भी लाल कर दिया। शान्ति ने उस लज्जिता का हाथ धीरे से दबा दिया जिससे वह और भी अधिक शरमाकर शान्ति से चिपट-सी गई और मन ही मन सोचने लगी कि किसी प्रकार यहाँ से चली जाऊँ तो बचूँ।

विमला ने घूमकर राजेन्द्र की ओर देखा और कहा, "क्यों दादा, आज आपने हमारे इस बाग़ में आने की कृपा कैसे की?"

राजेन्द्र की विस्मयविमुग्ध दृष्टि उस लज्जावन्त मुख पर ही लगी थी। उसने वहाँ से दृष्टि हटाकर कहा, "मुझे नहीं मालूम था कि यहाँ पर तुम लोगों का अड्डा है।"

शान्ति ने मुस्कराकर दुष्टतापूर्वक धीरे से कहा, "क्या कहना है!"

राजेन्द्र उठकर चलने लगा। विमला ने कहा, "जाते क्यों हैं, दादा? आप बैठिए। हम लोग तो जा ही रही हैं।"

राजेन्द्र ने व्यस्त होकर कहा, "नहीं, नहीं। सो क्यों? मै ही जाता हूँ।" यह कहते-कहते वह बाग़ से बाहर हो गया।

के लिए ही है। वह यहाँ प्रथम बार ही आया था। ऐसा अच्छा स्थान पाकर भला स्त्रियाँ क्यों चूकनेवाली थीं। वह लोग बिना रोक-टोक चाहे जिस समय यहाँ आ बैठा करती थीं। इसलिए इस घर के पुरुष इधर बहुत कम आते थे।

परम तृप्त होकर राजेन्द्र ने निद्रा का आवाहन करना आरम्भ किया। नेत्र बन्द करके उसने हाथ का उपन्यास पास के सूखे फूल-पत्तों के ढेर पर रख दिया। ठीक उसी समय चूड़ियों का शब्द और स्त्रियो के गले का मन्दस्वर सुनकर राजेन्द्र की तन्द्रा भङ्ग हो गई। उसने मुख ऊपर करके देखा कि सामने थोड़ी दूर पर तीन युवतियाँ बैठी हुई फूल बीन रही हैं। उसमे से एक तो ज्ञानेन्द्र के बड़े भाई योगेन्द्र की पत्नी शान्ति थी और दूसरी बहन विमला और तीसरी इन दोनों की आड़ में बैठी थी, इससे ठीक न देखा गया।

राजेन्द्र बड़ी कठिनाई में पड़ा। मालूम होता है स्त्रियों ने तो इसे अभी तक नहीं देखा था; परन्तु वह स्त्रियों को देखकर अब वहाँ कैसे लेटा रह सकता है। परन्तु कठिनता तो यह है कि अब वह इन स्त्रियो के सामने उठकर जा भी नहीं सकता। मन ही मन वह इन स्त्रियों के ऊपर बहुत चिढ़ा।

सहसा उच्चस्वर और कोमलकठ से हँसकर तीसरी किशोरी ने एक मुट्ठी बकुल के फूल लेकर शान्ति की ओर फेंके। फूल सबके सब राजेन्द्र के सिर, मुख और शरीर पर झड़

पड़े। राजेन्द्र ने जल्दी से उठकर कहा, "वाह, भाभी, वाह!"

चकित होकर शान्ति ने माथे का कपड़ा ठीक करके उधर देखा। उस तीसरी अपरिचिता ने भी लज्जित होकर माथा नीचा कर लिया और शान्ति के पीछे जा छिपी। राजेन्द्र की मुखदृष्टि की एक ही झलक ने उसके सुन्दर गुलाबी मुख-मंडल को और भी लाल कर दिया। शान्ति ने उस लज्जिता का हाथ धीरे से दबा दिया जिससे वह और भी अधिक शरमाकर शान्ति से चिपट-सी गई और मन ही मन सोचने लगी कि किसी प्रकार यहाँ से चली जाऊँ तो बचूँ।

विमला ने घूमकर राजेन्द्र की ओर देखा और कहा, "क्यों दादा, आज आपने हमारे इस बाग़ में आने की कृपा कैसे की?"

राजेन्द्र की विस्मयविमुग्ध दृष्टि उस लज्जावन्त मुख पर ही लगी थी। उसने वहाँ से दृष्टि हटाकर कहा, "मुझे नहीं मालूम था कि यहाँ पर तुम लोगों का अड्डा है।"

शान्ति ने मुस्कराकर दुष्टतापूर्वक धीरे से कहा, "क्या कहना है!"

राजेन्द्र उठकर चलने लगा। विमला ने कहा, "जाते क्यों है, दादा? आप बैठिए। हम लोग तो जा ही रही हैं।"

राजेन्द्र ने व्यस्त होकर कहा, "नहीं, नहीं। सो क्यों? मैं ही जाता हूँ।" यह कहते-कहते वह बाग से बाहर हो गया।

विमला ने अर्थपूर्ण दृष्टि से किशोरी की ओर देखा ; परन्तु उसने इस अभिनय का कुछ अर्थ न समझा था। अभी तक उसकी यह सब समझने की आयु न थी।

राजेन्द्र ने बाहर जाकर देखा कि वहाँ पर ज्ञानेन्द्र, योगेन्द्र और विमला के स्वामी हरीश इत्यादि सब आकशनब्रिज खेल रहे है। उसे देखते ही योगेन्द्र ने कहा, "यह सब साज-बाज लेकर तुम कहाँ गये थे, भाई?" तकिया धम से फ़र्श पर फेंककर एक आरामकुरसी पर राजेन्द्र हाथ-पैर फैला कर बैठ गया। बोला, "हाँ, गया तो था परन्तु........"

ज्ञानेन्द्र बात काटकर बोला, "परन्तु के क्या माने? बाग़ ही में तो जाते देखा था।"

राजेन्द्र ने सीधे होकर झट से उत्तर दिया, "यदि देखा तो तुमने मुझे मना क्यों नहीं किया?"

"क्यो, इससे क्या हुआ?"

"होगा क्या? उन लोगो ने भगा दिया।"

"वह कौन? किसने भगा दिया?"

मुँह बनाकर राजेन्द्र ने उत्तर दिया, "रहने दो। तुम्हें कष्ट करके उनका हाल पूछने की आवश्यकता नहीं है।"

सब लोग एकदम हँस पड़े और फिर उन्होंने अपना खेल आरम्भ किया। आँखो के आगे खुली किताब रखकर राजेन्द्र कुरसी पर लेट गया। सुन्दरी किशोरी के हाथ से फेंके हुए

फूलों के घाव ने यौवनोद्दीप्त तरुण हृदय के अनिर्वचनीय मधुर उच्छ्वसित कम्पन को जगा दिया था। उसके छल्लेदार बालों मे अब भी दो-एक फूल अटके थे। उन्हे देखकर हरीश ने कहा, "मालूम होता है तुम बकुल के नीचे लोट-पोट करके आये हो।"

राजेन्द्र—तुमने कैसे समझा ?

हरीश—यह क्या आश्चर्य है ? ज्ञानेन्द्र तक का विवाह हो गया और अब तुम्हारा........।

राजेन्द्र—हाँ, इसी से शायद तुमने समझा कि मै बकुल के नीचे लोट रहा था।

हरीश—अरे नहीं। तुम्हारे सारे सिर में फूल लगे हैं न ?

राजेन्द्र—ओह ! यह बात है।—यह कहकर उसने अपना सिर झाड़ दिया। परन्तु इस प्रकार झटपट मन को झाड़ डालना तो सहल नहीं है।

वकील रायबहादुर कमलाकान्त राय अवस्था के सम्पन्न मनुष्य हैं, फिर भी उन्होंने प्रतिज्ञा की कि बिना करार किये वह कन्या का विवाह करेंगे। इससे यदि कोई भला आदमी उनकी कन्या से विवाह करे तो उत्तम है, नहीं तो उनकी कन्या कुमारी ही रह जायगी। इस बात के साथ ही साथ कुछ काम भी दिखाने की इच्छा से वह अपनी कन्या लावण्यमयी को अपने पुत्रों के साथ ही समानभाव से शिक्षा दिला रहे हैं।

आजकल लावण्य एंट्रेंस की परीक्षा देकर छुट्टियाँ मना रही है। उसके खिले हुए गुलाब के फूल के समान प्रफुल्ल अम्लान प्रचुर सौंदर्य में अभी तक संसार की धूलमिट्टी की छाया नहीं पड़ी थी। प्रणयसम्बन्धी किसी व्यापार के साथ अभी तक उसका परिचय नहीं हुआ था। पढ़ने-लिखने के बोझ से यह बातें अभी तक किताबो और काग़ज़ों की आड़ में ही छिपी रह गई थीं।

लावण्य का सहज संकुचित स्वभाव ही ऐसा था कि पुरुप-मात्र के सामने पड़ने से ही उसका मुखमंडल लाल हो उठता था। राजेन्द्र के सामने भी ऐसा ही हुआ। विमला और शान्ति के हँसी-ठट्ठे का गूढ़ मतलब अब तक उसकी समझ में नहीं आया। अर्थहीन दृष्टि से उनके मुख की ओर देखती रहती, या कभी किसी बात का कुछ मतलब समझने पर हँस-कर मुख नीचा कर लेती थी। जिसके हाथ के फूलों की चोट खाकर राजेन्द्र बाग़ से वापस आया था, वह लावण्य यही हैं। अनिन्दनीय सुन्दरी षोडशी विमला की ननद लगने से ही ज्ञानेन्द्र के विवाह में हरीश के साथ इस घर में आई थी।

स्कूल की छात्री शिक्षिता कन्याओं के साथ साधारण गृहस्थ कन्याओं की समानता करने में जो एक प्रकार का विशेषत्व पाया जाता है, उससे स्कूल की लड़कियों के ऊपर अधिक दृष्टि पड़ती है। इनकी भद्रता और सभ्यता, फ़ैशन

तथा ब्लाउज़ की काट-छाँट और साड़ी पहनने का ढंग और बाल बाँधने के क़ायदे से जो एक हल्की श्री उत्पन्न होती है, वह सहज मे ही उनकी ओर दृष्टि आकर्षण कराती है और यही एक नयापन है।

इस बात को कई दिन बीत गये, तब भी राजेन्द्र जान न सका कि यह लड़की कौन है। इस परिचय के पाने और न पाने से राजेन्द्र का कुछ सम्बन्ध न होने पर भी वह यह जानने की चेष्टा करने लगा जिससे उसका अकारण कौतूहल निवारण हो जाय।

राजेन्द्र के मामा सदैव से ही विदेश में वास करते हैं। वह इस ओर की रीति-रिवाज की कुछ खबर नहीं रखते। बचपन से ही देश के बाहर रहकर बाहर के ही आचार-व्यवहार से वह एक नये तन्त्र के ही व्यक्ति हो गये थे। यद्यपि आजकल अपने मुख से वह भी बीच-बीच मे नये फ़ैशन की निन्दा कर लेते थे, तब भी किसी ओर किनारा न पाने पर वह उदारमत के दल के पक्षपाती ही समझे जाते थे। उनके लड़के कहा करते थे कि हमारे पिताजी की भाँति के मनुष्य बहुत कम हैं।

उन्होने अपने लड़कों के विवाह मे अपने मत से भी अधिक लड़कों के मत का विचार रक्खा था। भविष्य में जिससे वह लोग विवाह-विषय में माता-पिता को दोषी न

ठहरावें, यह उन्होने पहले ही ध्यान में रखकर व्यवस्था की थी। उनके पुत्र भी उनसे अपने मन की बात कहने तथा सलाह लेने में सकोच न करते थे।

एक दिन राजेन्द्र किसी काम से अपने मामा के पास जा रहा था। वह उस समय अन्दर के कमरे में विश्राम कर रहे थे। राजेन्द्र ने सीढ़ी के पास आकर देखा कि उसी दरवाजे के पास खड़ी हुई वही सुन्दरी कन्या हास्योच्छ्वसित कंठ से न-मालूम क्या कह रही है। वह तुरन्त वहाँ से हट गया। नीचे सबसे छोटा ममेरा भाई महेन्द्र खेल रहा था। राजेन्द्र ने उससे पूछा, "ऊपर मामाजी के कमरे में कौन-कौन बैठा है रे?"

महेन्द्र दौड़कर देखने चला गया और आकर बोला, "दीदी और लावण्य दीदी हैं। बस।"

राजेन्द्र और कुछ न कहकर चुपचाप बाहर घूमने निकल गया; परन्तु दो-तीन दिन बाद ही राजेन्द्र के मन की दबी हुई बात एकबारगी प्रकट हो गई।

मन के दर्पण में जो छाया पड़ी थी, समय बीतने पर उसका मलीन होकर मिट जाना कुछ आश्चर्यजनक घटना न होती; परन्तु जनरव ने जैसे उसे अमिट बनाने के लिए प्रयत्न करने पर कमर बाँधी हो।

इसी तरह करके वकील कमलाकान्त राय की रूप में लक्ष्मी गुण में सरस्वती कन्या की बात राजेन्द्र के मामा के हाथ से

पत्र के अन्दर उसके पिता जगदीश बाबू के पास जा पहुँची। परन्तु क्या जाने वहाँ से क्या उत्तर आवे, इसलिए राजेन्द्र को इसकी कुछ खबर न दी गई। इसी से इस विषय में वह कुछ जानता न था।

राजेन्द्र के मामा भी अपने बहनोई जगदीश बाबू की दृढ़ता अच्छी तरह जानते थे। एक बार उनका अमत हो जाने पर फिर वह उस बात के लिए किसी प्रकार मत न देंगे, यह वह खूब जानते थे। इसलिए पहले उनकी जगदीश बाबू को पत्र लिखने की इच्छा न हुई; परन्तु कमलाकान्त बाबू के सामने राजेन्द्र को तेजस्वी पुरुष बता देने का परिचय देने की इच्छा को वह नहीं रोक सके। इसके सिवाय राजेन्द्र की नानी की भी आन्तरिक इच्छा थी कि लावण्य का विवाह राजेन्द्र के साथ हो, इसी से वह माँ की बात भी टाल न सके।

प्रातःकाल जल-पान करके राजेन्द्र बाहर आने के लिए उठना ही चाहता था कि इसी समय उसकी नानी ने उसके हाथ मे एक पत्र देकर कहा, "यह जगदीश बाबू की चिट्ठी पढ़-कर देखो, हमारी कोई बात भी वह कभी रखते है !"

राजेन्द्र पहले तो सरनामे पर अपने मामा का नाम देखकर कहना चाहता था कि यह चिट्ठी तो मेरी नहीं है ; परन्तु फिर कुछ सोचकर रुक गया और चिट्ठी खोलकर पढने लगा। यह चिट्ठी उसके पिता ने उसके मामा को ही लिखी थी।

उसमें लिखा था कि अगले महीने के पहले सप्ताह में ही राजेन्द्र का विवाह स्थिर हो गया है। कन्यापक्ष ऐसा कुछ धनी नहीं है, इसी से विवाह में कुछ विशेष आडम्बर न होगा; परन्तु अब उसे रोकने का कोई उपाय नहीं है। विशेषकर वह नहीं चाहते कि उनके लड़के आप ही देख-सुनकर साहब लोगो की भाँति विवाह करे। इससे पिता की शुभकामना तथा स्नेह का अविश्वास करना हुआ, इसमें क्या सन्देह है। इसके सिवाय उन्होने जो एक दरिद्र परिवार में रत्न खोज पाया है वह इस धनी घर की शिक्षाप्राप्त लड़की से किसी प्रकार कम न होगा। और एक बात यह भी है कि कमलाकान्त को वह जानते हैं। वह एकदम आर्यसमाज के नियमो का पालन करनेवाले हैं, यह भी वह जानते हैं। अतएव राजेन्द्र के मामा फिर उन्हे इस विषय में अनुरोध करके विवश न करें और राजेन्द्र को शीघ्र भेज दें। इत्यादि।

बड़ा लम्बा पत्र था। पत्र की प्रत्येक लाइन में जैसे राजेन्द्र अपने पिता के अविचल अटल मुख का आभास पाता था। उनकी बात का कभी एक शब्द भी वृथा नहीं जाता तथा उनकी बात कभी मिथ्या नहीं होती थी। एवं इस बार भी नहीं हो सकती।

भारी मुख करके राजेन्द्र ने कहा, "तो यह पत्र मुझे क्यों देती हो? मैं क्या करूँ?"

राजेन्द्र की नानी ने कहा, "करोगे क्या, बेटा ? पढ़ देखो। हमने तो लिखा भी था ; परन्तु वह ······"

राजेन्द्र ने तीखे स्वर से कहा, "मैने क्या आपसे कुछ लिखने या न लिखने को कहा था ? इस विषय में मै क्या जानता हूँ ?"

चिट्ठी अपनी नानी के पैरों के पास रखकर राजेन्द्र ज़ोर से जूते का शब्द करते-करते घर से बाहर चला गया।

राजेन्द्र के चले जाने पर शान्ति ने कहा, "वह क्या नाराज़ हो गये, दादीजी ? मालूम तो होता है कि बहुत नाराज़ हो गये हैं।"

वृद्धा ने अप्रसन्नमुख से कहा, "तो नाराज़ होने ही से क्या होगा ? उसका बाप क्या ऐसा-वैसा आदमी है जो वह अपनी बात बदलेगा ? वह सदैव से ही एक बात का आदमी है। एक बार 'नहीं' मुँह से निकल जाने के बाद किसी की सामर्थ्य नहीं कि 'हाँ' कहला सके। परन्तु जगदीश के बाप ऐसे आदमी नहीं थे।"

शान्ति ने कहा, "यदि वह यहाँ एक बार आते तो लावण्य को देखकर मना नहीं कर सकते थे। फिर वह किसी गाँव की गँवारी लड़की को बहू बनाने की इच्छा ही न करते ; परन्तु हाँ, जो पहले लावण्य को देख लेते तभी तो। क्यों दादीजी ?"

"तो न वह आवेंगे न देखेंगे। वह क्या समझते है, उसे वही जाने। इधर लड़के का मन दुखी न हो, बस यही इच्छा है।"

"नहीं-नहीं, मन दुखी क्यों होगा? मन दुखी होने की क्या बात है? बहू सुन्दर होने से ही प्रसन्न हो जायँगे।"

"हाँ, यही हो। यदि यही हो तो अच्छा हो। और क्या?"

राजेन्द्र के मामा ने पुकारा, "माँ"। शान्ति जल्दी से एक छोटी चौकी बिछाकर हट गई। वह उस पर बैठकर बोले, "यह चिट्ठी यहाँ कौन लाया है, माँ।"

"ज़रा मैंने राजेन्द्र को उसके बाप की चिट्ठी दिखाई थी।"

"राजेन्द्र को? राजेन्द्र को दिखलाने की क्या ज़रूरत थी? भला बतलाओ तो।"

माँ एकबारगी अप्रतिभ हो गईं। बोलीं, "मैंने सोचा कि एक बार उसे समझा दूँ कि ..."

"अच्छा नहीं किया माँ। बहुत बुरा हुआ। मैंने जगदीश बाबू को चिट्ठी लिखी थी या इस विषय में कुछ भी चेष्टा कर रहा हूँ, यह मैंने ज़रा भी राजेन्द्र को नहीं जानने दिया था। तुमने व्यर्थ ही उसे चिट्ठी दिखाई। यह भी नहीं सोचा····अस्तु जाने दो।" वह गम्भीर मुख से चिट्ठी हाथ में लेकर बाहर चले गये। यथेष्ट क्षुब्ध होने पर भी और कोई बात नहीं कही। क्रोध, दुख और क्षोभ के समय चुप हो जाने का ही उनका स्वभाव था।

पुत्र का चिन्ताच्छन्न मुख देखकर उनकी माँ मन ही मन जमाई की अविवेचना के ऊपर और भी अधिक चिढ़ गईं।

तीसरा परिच्छेद

र से बाहर आकर भी राजेन्द्र बैठा या खड़ा नहीं हुआ। वहाँ की प्रचुर हँसी-दिल्लगी के बीच वह टिक नहीं सका। वह उसी तेज़ धूप मे ही छाता लगाकर घर से बाहर चला गया। परन्तु ग्रीष्म की प्रखर धूप के ताप को असहनीय समझ-कर शीघ्र ही उसे फिर आना पड़ा। घर आकर वह एक ईज़ी चेयर पर लेट गया।

पहले राजेन्द्र के मन मे डर हुआ कि पिताजी मुझे तो कहीं इस बात के बीच में समझकर नाराज़ नहीं हुए है। पश्चात् मन ही मन काल्पनिक ग़रीब की लड़की को भविष्य में पत्नी-रूप में देखा। इससे उसके मन में कुछ प्रफुल्लता आने के स्थान पर उसकी विरक्तता और भी बढ गई। उसके साथ शिक्षिता सुन्दरी की कल्पना तुलसी-मजरी के साथ, गुलाब या कमल के फूल की तुलना के अनुसार जान पड़ी। ओह! कितना अन्तर है। हाय रे भाग्य! भला अँधेरे घर में

वह प्रकाश कैसे सहन हो सकता है! वह असभ्य घराने की लड़की क्या ऐसी अच्छी हो सकती है ?

इतनी देर बाद उसके मन में विचार आया कि पिता ने उसे दस-बारह दिन के अन्दर ही लौटने को लिखा है। उसके अर्थ क्या है ? उसी का विवाह है। परन्तु पहले कभी उन्होंने स्पष्ट कुछ नहीं कहा। क्या वह उसे इस विषय में कुछ संवाद देना आवश्यक नहीं समझते ? क्यों नहीं समझते ? क्या वह मनुष्य नहीं है ? राजेन्द्र का झुँझलाया हुआ मन सारे संसार के ऊपर ही चिढ़ उठा।

ज्ञानेन्द्र हँसते-हँसते आकर बोला, "क्या बात है राजेन्द्र! इस बार तुम भी खूब हँसी-खुशी मनाओ। तुम्हारे दिन भी तो आ गये।"

हरीश—परन्तु हमारा क्या निमन्त्रण नहीं होगा ? तुम्हारा मतलब क्या है, राजन ?

राजेन्द्र—(भारी मुख करके) मैंने भी तुम्हारे विवाह में कुछ नहीं खाया-पिया था। जरा याद करके देखो।

हरीश—वाह ! तो तुम आये क्यों नहीं ? खैर, तुम निमन्त्रण मत करना। हम लोग यों ही आकर दावत खा जायँगे।

राजेन्द्र—ओहो ! बराती बनकर जाओगे ! क्यों ? अच्छी बात है चलना और पेड़ के नीचे बैठकर खूब पेट भरकर दही-चूड़ा या दाल-भात खा आना। बहुत ठीक होगा।

बात समाप्त करके राजेन्द्र जोर से हँसने लगा।

योगेन्द्र—(गम्भीरता से) अरे जाओ ऐसा पागलपन न करो। दो दिन बाद ससुराल जाओगे। उन्हे ऐसी बात न कहो।

"तुम्हीं लोग तो कह रहे हो"—यह कहकर राजेन्द्र तीखे मन से सत्य ही चुप होकर बैठ गया। जब किसी मनुष्य के लिए अकाट्य फाँसी की आज्ञा हो जाती है तो वह मृत्युदंड का असामी उस भयंकर दड की प्रतीक्षा में ही व्याकुल हो जाता है, और जब तक वह समय आ नहीं जाता उसे शान्ति नहीं मिलती; उसी भाँति राजेन्द्र के मन की अवस्था भी हो गई थी। यह अनिवार्य और अप्रिय कार्य जब तक समाप्त नहीं हो जाता तब तक शान्ति नहीं और निस्तार नहीं।

सायंकाल के समय राजेन्द्र के मन के साथ बाजी लगाकर काले-काले मेघों ने दल के दल इकट्ठे होकर आकाशमंडल को एकदम नीरद वर्ण बना डाला। जैसे प्रकृति के घने काले-काले बालो में कोई सोने की कंघी फेर रहा हो, वैसे ही बीच-बीच में विद्युत् की चमक मालूम होती थी। काल वैशाखी की आँधी की अपेक्षा मनुष्य के छोटे से हृदय के अन्दर जो मन रहता है, उसमें जैसे कभी-कभी आँधी उठा करती है, वह उस आँधी की अपेक्षा बहुत अधिक भयंकर और प्रबल होती है।

घर के सब लोगों की आँख बचाकर कदमवृक्ष के नीचे से बहुत-से फूल बीन लाकर और सींक में पिरोकर महेन्द्र

गुड़ियों का रथ बना रहा था और बीच-बीच मे सिर उठाकर कुछ अंटसंट गा भी उठता था।

इसी समय राजेन्द्र की चट्टी की आहट पाकर उसका गाना बन्द हो गया। वह सिर उठाकर अवाक् होकर उधर देखने लगा।

तब तक भी राजेन्द्र के सफ़ेद शुभ्र मस्तक पर सावन के मेघ की भाँति गम्भीर बादल छा रहे थे। उसने कोमल स्वर से कहा, "महेन्द्र! जा भाई जरा नानीजी से कह आ कि मैं आज ही घर जाऊँगा।"

महेन्द्र और भी अधिक विस्मित हो और आँखें फैलाकर बोला, "आज ही!"

"हाँ आज ही। तू जाकर जल्दी नानीजी से कह आ। दौड़कर जा।"

इस पर भी महेन्द्र को विश्वास न हुआ, बोला, "वर्षा तो हो रही है। कैसे जाओगे?"

विरक्त होकर राजेन्द्र ने कहा, "सो जैसे होगा मैं जाऊँगा। तू जा तो सही।"

महेन्द्र खिन्नमन से चला गया।

क्षण भर बाद योगेन्द्र ने द्रुत पद से आकर पूछा, "आज ही जा रहे हो? यह क्या बात है राजन? इसके माने मेरी समझ मे नहीं आते।"

"माने और क्या होंगे? तब भी पिताजी ने जल्दी बुलाया है न? इसी........"

"तो क्या और कोई दिन नहीं मिला? ऐसे बुरे दिन क्या कोई घर छोड़कर जाता है?"

राजेन्द्र ने दृढ़स्वर से कहा, "इससे क्या? मैं आज ही जाऊँगा। वर्षा मेरी कुछ हानि नहीं कर सकती। ट्रेन के भीतर तो रहूँगा।"

योगेन्द्र ने राजेन्द्र की बात को उड़ा देने की इच्छा से उपेक्षा के स्वर से कहा, "पागल हो, और क्या? आज कभी जाना नहीं हो सकता।"

"क्यों नहीं हो सकता? अच्छा देखते रहो होता है या नहीं।"

हारकर योगेन्द्र ने मुँह फुला लिया और झुँझलाकर कहा, "जो मनुष्य किसी की बात न माने, उससे कुछ कहना व्यर्थ है। जो इच्छा हो सो करो।"

राजेन्द्र के मामा ने भी यही बात कही, परन्तु जरा अन्य भाव से। मन ही मन वह भी अत्यन्त क्षुब्ध हुए थे।

योगेन्द्र ने चलते समय एक बार फिर विनती के स्वर से कहा था, आज न जाओ भाई। ऐसा तुम्हारा कौन-सा जरूरी काम है जो आज पानी-बूँदी के दिन न जाने से रसातल चला जायगा?"

"और मेरे चले जाने से तुम्हारी ही कौन-सी हानि होगी जो इतना आग्रह कर रहे हो? ऐसा दिन देखकर ही तो और

भी जाने की इच्छा हो रही है। ट्रेन में बैठकर आँधी-पानी देखने में बड़ा आनन्द आता है। ठंढे-ठंढे जाना होगा।"

योगेन्द्र नाराज़ होकर चुप रह गया। राजेन्द्र उसी दिन हृदय मे भरे हुए अभिमान की व्यथा को लेकर बनारस से चला गया। यह अभिमान उसको अपने पिता पर था। परन्तु उग्र प्रकृति पिता के सामने इसे प्रकट करने का कोई उपाय नहीं था। इस गम्भीर वेदना के काँटे केवल उसी के हृदय में चुभ-चुभकर कष्ट देते रहेंगे, परन्तु वह इस दुर्बलता को हटा नहीं सकता था। उसने तो कोई दोष नहीं किया था, फिर भी उसे साहब लोगों की भाँति देख-सुनकर विवाह करने की बात में क्यों मध्यस्थ बनाया गया है? इत्यादि।

यौवन की अन्ध कल्पना उसे तपे हुए विद्रोह के उग्र पथ पर नचा रही थी। स्नेह की कोमल छाया कहीं दिखाई नहीं देती थी।

संसार की मरुभूमि की भाँति सूखी और नीरस मूर्ति उसकी आँखो के सामने फिर रही थी।

चलती हुई ट्रेन में बैठे हुए राजेन्द्र को बाहर के उन्मत्त झड़ बादल का तांडव-नृत्य अपने ही मन का प्रत्यक्षरूप जान पड़ता था।

चौथा परिच्छेद

एक बड़े टेबुल पर ढेर के ढेर काग़ज़-पत्र रक्खे हुए थे। पास ही ज़मींदार जगदीश बाबू एक कुरसी पर बैठे हुए उन स्तूपाकार बहीखातों पर झुके खसखस करके कलम चला रहे थे। एक मुंशी पास खड़ा हुआ एक के बाद दूसरा काग़ज़ उनके सामने कर देता था। सामने की ओर की खिड़की द्वारा ज़मींदार बाबू की आँखों का चश्मा दिखाई दे रहा था। भय से त्रस्त नौकर-चाकर कोई भी खिड़की की ओर नहीं जाते थे। जगदीश बाबू अत्यन्त गम्भीर प्रकृति के मनुष्य है। बहुत-सी वाक्‌वितंडा न करने पर भी उनकी एक ही बात में जो आज्ञा या दृढ़ता रहती थी, उसके ऊपर द्विरुक्ति करने की सामर्थ्य घर में किसी को न थी। अकाल वार्द्धक्यता ने उन्हें समय से पहले ही वृद्ध बना दिया था, परन्तु फिर भी उनके मुख पर जो तेज और दृढ़ता व्याप्त थी वह ज़रा भी कम न हुई थी।

आफ़िस घर के सामनेवाली लाल कंकड़ की सड़क फाटक

तक लाल चौड़े किनारे की साड़ी की तरह चली गई थी। सड़क के दोनों ओर अर्द्धचन्द्राकार वाटिका थी। उसमें नाना प्रकार के देशी और विलायती फूलों के वृक्ष क्यारियों में सुन्दरता से लगे थे। हरे मखमली ग़लीचे की तरह मुलायम घास के ऊपर घर के बूढ़े माली का लड़का घास काटने की मशीन चला रहा था जिससे वह एक-साँ हो गई थी। घास के बीच-बीच में एक प्रकार के छोटे-छोटे पौधों में नीले रंग के असंख्य फूल फूल रहे थे।

स्टेशन से पैदल और सूखे मुँह बिना सूचना दिये राजेन्द्र को आये देखकर यह लोग चकित रह गये।

मोटरकार का शौफ़र रामेश्वर उस समय बाग़ के कोने में बैठा हुआ बीड़ी पी रहा था। राजेन्द्र को देखकर झटपट आधी जली हुई बीड़ी फेंककर यह स्मरण करने की कोशिश करने लगा कि उससे किसी ने स्टेशन पर मोटर ले जाने को कहा था या नहीं। परन्तु उसे तो किसी ने भी कुछ नहीं कहा था, अतः वह निर्दोष और निर्भय है।

आफ़िस घर के सामने बरामदे मे बैठे हुए प्यादे-दरबान धीमे स्वर से आपस में गप्प कर रहे थे। हठात् राजेन्द्र को आते देखकर वह सन्मानपूर्वक उठकर खड़े हो गये।

राजेन्द्र ने इधर-उधर न देखकर सीधे पिता के सम्मुख जाकर उन्हे प्रणाम किया। उन्होने एक क्षण के लिए सिर ऊपर

उठाकर पुत्र के सूखे मुख की ओर विस्मय से देखा और पूछा, "क्या स्टेशन से पैदल ही आ रहे हो?"

राजेन्द्र ने सिर हिलाकर बताया, "हाँ"।

उन्होंने कहा, "क्यों? यदि पहले से खबर देते तो गाड़ी भेज दी जाती।"

राजेन्द्र ने कुछ उत्तर न दिया। अतः उन्होने फिर पूछा, "वहाँ सब कुशल है न?"

"हाँ, सब अच्छे है।"

जगदीश बाबू फिर अपना काम करने लगे। राजेन्द्र धीरे-धीरे अन्तःपुर की ओर चला गया।

डेढ़ वर्ष पहले राजेन्द्र की छोटी बहन सुलता का विवाह हुआ था। चार मास हुए वह एक छोटा शिशु छोड़कर अकाल में ही परलोक चली गई थी।

सबसे छोटी सन्तान पुत्री सुलता को माँ बहुत ही प्यार करती थीं। कन्या के शोक में वह एकदम पागल-सी हो गई थीं। मातृहीन शिशु को वह क्षण भर के लिए भी आँख से ओझल न करती थीं। कन्या के इस एकमात्र चिह्न को देखकर इतने प्रबल शोक में भी उन्हे ज़रा-सी शान्ति मिलती थी।

एक आँख के आँसू पोंछ और एक से बहाकर वह मातृहीन शिशु का पालन-पोषण करती थीं। इसी आयु में जो हत-भाग्य बालक बचा हुआ है उसे केवल माँ ही खोनी पड़ी है,

यह बात नहीं। उसे साथ ही साथ पिता ने भी त्याग दिया है। बाईस बरस की आयु में पत्नी-वियोग के उपरान्त उसे दूसरी पत्नी का पाणिग्रहण करने में तीन मास से अधिक विलम्ब न लगा। इसी लिए वह विपत्नीक है या पहले भी एक बार गृहस्थ रह चुका है, यह बात वह अपनी इस नई पत्नी के सन्मुख बताना उचित नहीं समझता। इसी से वह लड़के की खोज-खबर भी प्रायः नहीं के बराबर ही रखता था।

बहन की अकाल मृत्यु के उपरान्त माँ के साथ राजेन्द्र की यह पहली ही भेंट है। इसी से माँ के सामने जाते हुए उसका हृदय न-जाने कैसा कर रहा था। यह एकमात्र पुत्री माता की कैसी आदर और स्नेह की पात्री थी!

पालने पर बालक को सुलाकर अन्नपूर्णा नौकर को बाजार से चीज़-वस्तु मँगाने को भेज रही थीं। इसी समय उन्हें राजेन्द्र के आने की सूचना मिली। पैसे गिनने बन्द करके कहने लगीं, "अरे राजन आ गया। परन्तु उसने कुछ खबर तो दी नहीं थी।" बात समाप्त होने से प्रथम ही राजेन्द्र ने आकर माँ को प्रणाम किया। राजेन्द्र को देखते ही माँ को पुत्री का शोक उमड़ पड़ा। परन्तु पुत्र की म्लान प्रकृति और उसका सूखा मुख देखकर वह कुछ न बोलीं। किसी प्रकार अपने को सम्भालकर और एक गम्भीर निःश्वास लेकर उन्होंने पूछा, "राजन! क्या तेरी तबियत अच्छी नहीं है?"

राजेन्द्र ने पालने पर के शिशु की ओर देखकर कहा, "नहीं तो। अच्छा ही हूँ।"

अन्न०—हाँ यह तो तेरा चेहरा देखने से ही मालूम पड़ता है। इसी को अच्छा कहते हैं? ख़ैर, बनारस गया था न?

राजेन्द्र—हाँ गया था। वहीं से तो आ रहा हूँ।

अन्न०—ज्ञान का विवाह कुशलपूर्वक हो गया। बहू कैसी है?

राजेन्द्र—कैसी क्या? अच्छी ही होगी।

अन्न०—तब भी कैसा रंग है? मुँह का नक्शा कैसा है? योगेन्द्र की बहू की भाँति है?

राजेन्द्र—मैं यह सब नहीं जानता। बहू अच्छी है, केवल यही जानता हूँ। कैसा रंग है, कैसा चेहरा है, यह सब मैं काग़ज़ पर लिखकर नहीं लाया।

राजेन्द्र को मुँह-हाथ धोने के लिए भेजकर माँ अन्नपूर्णा लड़के के खाने-पीने का प्रबन्ध करने चली गईं।

तीन-चार दिन उपरान्त एक दिन जगदीश बाबू ने राजेन्द्र को बुलाकर अपनी स्वाभाविक संक्षिप्त भाषा में उसे बता दिया कि उसके विवाह का सब ठीकठाक हो गया है। वह लोग देखने आयेंगे, इसलिए उसे घर पर ही रहना चाहिए।

जो राजेन्द्र आज तक कभी पिता के सम्मुख खड़ा होकर बात तक नहीं करता था, न कभी पिता की बात का प्रतिवाद करता था, उसी राजेन्द्र ने अति संयतकंठ से कहा कि वह

विवाह करेगा, परन्तु इच्छा से नहीं, केवल पिता की आज्ञा से और इसलिए उस पर उसके कर्तव्य का कोई दावा किसी समय न रहेगा।

परन्तु यह साधारण निषेध टिक न सका।

कन्या-पक्षवालों ने वर की यह बात सुनी या नहीं सुनी, कुछ पता न लगा। परन्तु इस घर में निकट होनेवाले शुभ कार्य का उद्योग-आयोजन पूरी तौर से चलने लगा। इसके उत्साह के मारे अन्नपूर्णा का शोकातुर हृदय भी मानों चंगा हो उठा।

इन सब कामो की व्यस्तता मे भी अन्नपूर्णा को एक दिन कुछ सन्देह हुआ कि उनके पुत्र का मन ऐसा निरुत्साह और मन्द क्यो है। वह हाथ का काम छोड़कर राजेन्द्र के पास आ बैठीं। राजेन्द्र बिस्तरे पर लेटा हुआ एक किताब पढ रहा था। वह उठकर बैठ गया और बोला, "क्या है अम्मा?"

अन्न०—कुछ नहीं बेटा।

राजेन्द्र—बात तो कुछ अवश्य है। क्या बात है बता दो अम्मा।

अन्न०—अच्छा राजन इसी शुक्रवार ही को तो तेरी बारात जायगी और तू इस तरह भारी मुख करके रहता है। तुझे क्या कोई कष्ट है? कहता क्यो नहीं, बेटा।

राजेन्द्र—(कुछ देर रहकर) तो विवाह होगा यह जानकर

क्या नाचते फिरना होता है, यह भी तो मुझे मालूम नहीं। और फिर नाचते फिरने से लोग पागल न कहेंगे ?

अन्न०—सुनो तो ज़रा इस पागल लड़के की बात। तू प्रफुल्ल होकर हँसे-खेलेगा तभी तो विवाह की खुशी जान पड़ेगी।

राजेन्द्र—तो क्या हुआ ? मैंने तो कुछ कहा भी नहीं।

अन्न०—हाँ, यह तो सत्य है। परन्तु घर मे और किसी के न होने से मै अकेली कैसे रहूँ, बेटा, यही कह रही हूँ। आह! अभी उस दिन मेरी सुलता....माँ बिलख-बिलखकर रोने लगी॥

लड़का अपलकदृष्टि से ऊपर की ओर देखकर कड़ी गिनने लगा। एक मुहूर्त तक कोई भी कुछ बोल न सका। शंकित माँ का मन सन्तान के अकल्याण के भय से छोटा-सा रह गया, परन्तु अब तो उसके बदलने का समय भी नहीं रहा। अन्नपूर्णा मन ही मन कहने लगीं, "यह क्या किया स्वामी!"

विवाह के एक दिन पहले योगेन्द्र और ज्ञानेन्द्र भी आ गये। आडम्बर कितना ही कम किया गया, परन्तु इन दोनों भाइयों को अलग रखने का कोई उपाय नहीं था।

अन्नपूर्णा इन कई दिनों के अन्दर सारे देव-देवियों के चरणों में प्रार्थना कर रही थीं जिससे राजेन्द्र का मन ठीक रहे और वह प्रफुल्लित हो जाय, परन्तु राजेन्द्र में कोई विशेष भावान्तर दिखाई नहीं पड़ा।

विवाह-यात्रा के समय बन्धु-बान्धव मिलकर जिस समय

राजेन्द्र को सुन्दर से भी सुन्दर बनाने की चेष्टा कर रहे थे, उसने केवल उसी समय उनका प्रतिवाद किया था। सभी बातों के अन्दर तीव्र विद्रूप की छाया भरी थी, परन्तु वह अच्छी तरह हँसकर बातें कर रहा था।

अन्नपूर्णा एक बड़े-बड़े मोतियों की माला हाथ में लिये हुए वहाँ आईं और उन्होंने उसे राजेन्द्र को पहना दिया। इसी माला को पहनकर राजेन्द्र के पिता-पितामह विवाह करने गये थे। इसको पहनना अब कुल-रीति बन गया था।

अन्नपूर्णा के चले जाने पर राजेन्द्र ने हँसकर कहा, "यह एक और आफ़त अम्मा दे गईं।"

योगेन्द्र—रहने दो न। यह एक गहना ही सही।

राजेन्द्र—क्या मुश्किल है ? इसकी क्या आवश्यकता है ?

योगेन्द्र—हाँ, उसका रहना जरूरी है! नहीं रहने से वह लोग क्या विचारेंगे ?

राजेन्द्र—'वह' ? हाँ, वह लोग इसे क्या पहचानेंगे ? सोचेंगे यह उसी की माला है। क्या कहते हैं, उसे........ ?

योगेन्द्र—क्या बकते हो ? छिः !

राजेन्द्र—जरा सुनो तो। वही छोटे-छोटे फल क्या होते हैं। हाँ याद आया—बेर, बेर। कहेंगे बेर की माला पहन-कर आया है। क्यों ?

योगेन्द्र—अरे जा, पागल कहीं के।

ज्ञानेन्द्र और योगेन्द्र हँस पड़े। लड़कों के हर्षोचित हँसने के शब्द ने अन्नपूर्णा के शंकित चित्त को कुछ आश्वासन प्रदान किया। सम्भव है कि इसी हँसी की तरंग और आनन्द की हवा से राजेन्द्र के मन का मेघ कटकर फिर से निर्मल हो जाय!

जिस भाँति सब करते हैं माँ का आशीर्वाद माथे पर चढ़ा और छोटे भाई भूपेन्द्र का हाथ पकड़कर राजेन्द्र गाड़ी मे जा बैठा। दूर के नाते की राजेन्द्र की एक दादी वहीं खड़ी थीं। यह देखकर बोलीं, "ज़रा देखो तो। मै देख रही थी कि बहू के सोच-विचार का कुछ ठिकाना नहीं है। इधर लड़के से ज़रा भी देर सही नहीं जाती। यह सब आजकल के लड़कों का ढंग है। इनके लिए कुछ सोच-विचार की आवश्यकता नहीं है।"

अन्नपूर्णा के सोच का कारण केवल राजेन्द्र के मन की मलीनता ही था। उसके सिवाय वह लड़के के मन की कोई बात नहीं जानती थीं। परन्तु उनकी अपेक्षा, जो उनके लड़के के मन की पीड़ा जानते थे, उन्होने भी इस काम मे पूर्ण उत्साह से योग दिया था। किसी अनजान और एक तरुणी नारी के कोमल स्निग्ध मुख के प्रभाव से ही राजेन्द्र के मन की सम्पूर्ण मलीनता एक मिनट में ही साफ हो जायगी, यह वह लोग समझते थे। विवाह होने के पश्चात् गृहस्थी सम्भालने पर कौन अतीत का विचार करता है। और कर भी नहीं सकता!

अन्नपूर्णा की हार्दिक इच्छा थी कि उनके कार्त्तिक के समान

रूपवान् पुत्र की वधू भी परी की भाँति ही सुन्दरी हो ; परन्तु पति के मुख से इस विषय में कोई बात न सुनने, पर भी उन्होंने दूसरों के मुख से जो कुछ सुना था, उससे उनकी इस साध के अब पूर्ण होने की कोई आशा नहीं रही। फिर भी उन्हें स्वामी से कुछ कहने की हिम्मत न पड़ी और कहने से भी कुछ फल न होता। बहुत दिन तक एक साथ ससार करने पर अन्नपूर्णा को यह ज्ञान प्राप्त हुआ था। विशेषकर स्वामी बिना विचार किये कोई काम न करते थे। इसलिए इसमें भी उन्होंने कुछ भला ही सोचा होगा।

भाग्य का दोष समझकर ही उन्हें सन्तोष करना पड़ा। मनुष्य का मन बहुत चंचल होता है। सोच करने से कुछ नहीं होता। फिर भी बिना सोचे रहा नहीं जाता। वह आप ही आप मन को प्रबोध देने लगीं। रूप यदि नहीं हो, केवल गुण ही हों और उनके लड़के का मन प्रसन्न कर सके तो उसी से काम चल जायगा। बहू तो केवल देखने की ही वस्तु नहीं है जो खाली रूप की ही आवश्यकता हो। फिर भी यह सोचकर दुख होता ही है कि ऐसे सुन्दर लड़के की बधू सुन्दर नहीं हुई। इसी रूप के लिए उनका बहुत आग्रह था। मालूम पड़ता है, इसी से देवताओं ने उनकी साध को पूरा नहीं किया। और राजेन्द्र तो और भी शौक़ीन और रुचिवान् है। उसे ही ऐसी बहू क्यों पसन्द आयेगी।

पाँचवाँ परिच्छेद
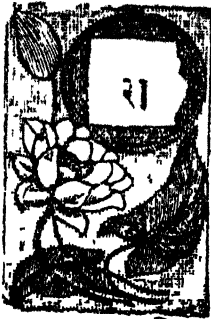
जेन्द्र का विवाह निरापद बीत गया। बहुत-सी धूमधाम नहीं हुई थी, इसी से कुछ गोलमाल नहीं हुआ। जो लोग बारात में गये थे वह वहाँ से सन्तुष्ट होकर ही लौटे थे।

आज उस दरिद्र गृह की कन्या राजेन्द्र के साथ उसके ऐश्वर्य-स्वर्ग के अन्दर आ पहुँची। कन्या बिलकुल नासमझ नहीं थी, इसलिए अपनी अवस्था समझ लेने की उसमें यथेष्ट बुद्धि थी। वह भय और संकोच से सन्न होकर खड़ी रह गई।

विवाह के समय केवल एक बार राजेन्द्र की अवज्ञापूर्ण दृष्टि स्त्री के ऊपर पड़ी थी। उस समय उसका मुख घूँघट से ढका था। केवल साँवले श्यामवर्ण दोनों हाथ दिखाई पड़ रहे थे। राजेन्द्र के सुन्दर गौरवर्ण हाथों पर वह हाथ नितान्त श्रीहीन मालूम होते थे। राजेन्द्र ने दाँतो से ओंठ दबाकर कठोर हँसी हँस दी। बिजली के भीतर जैसे अग्नि रहती है, उसी भाँति इस हँसी के अन्दर भी भीषण उत्ताप भरा था।

बिदाई के कुछ पहले बधू की माँ ने राजेन्द्र को बुला भेजा था; परन्तु राजेन्द्र ने बाहर बैठे-बैठे ही सिर हिलाकर आना अस्वीकार कर दिया। भीतर नहीं गया। बधू की माता ने सोचा था, इतने दिन के हृदय-धन को दूसरे के हाथो में सौपने से पहले दो-चार बातें समझाकर कह दूँ; परन्तु उनकी वह आशा पूर्ण नहीं हुई। उन्होंने जामाता को फिर एकदम बिदाई के समय ही देखा। तब वहाँ बहुत लोग इकट्ठा थे। अतः वह कुछ कह न सकीं। आँखो से आँसू बहाकर उन्होंने कन्या को गाड़ी में बिठा दिया। आत्मीय स्वजन अड़ोसी-पड़ोसी ब्राह्मण पंडित के जमाता के रूप-गुण की प्रशसा और कन्या के सौभाग्य की बात-चीत करते-करते इस तुरन्त के वियोग की व्यथा के लिए सान्त्वना देते हुए अपने-अपने घर चले गये। दशहरे से अगले दिन शून्य रामलीला मैदान की ओर देखकर, जैसे आगामी वर्ष की कल्पना करके जैसी सान्त्वना मन में होती है, ऐसे ही कन्या के भावी सुख की कल्पना करके ही माँ के मन में शान्ति हुई।

फूलशय्या (सुहागरात) के दिन अन्नपूर्णा अपनेआप आगे होकर, नौकर और दासी को लगाकर, राजेन्द्र के कमरे का संस्कार करने लगीं। पढने के कमरे को सोने के लिए सजाने में वह महाव्यस्त हो गई। राजेन्द्र एक बार वहाँ आकर

और माता के काम को देखकर हँस पड़ा। उसने पूछा, "यह क्या कर रही हो, अम्मा ?"

अन्नपूर्णा हँसी के शब्द से चकित होकर, पीछे फिरकर, बोलीं, "तू है ? अचानक हँसी से मै चौक पड़ी।"

राजेन्द्र—आज जान पड़ता है, तुम्हे और कुछ काम नहीं है। यह सब क्या कर रही हो ? जाओ उठो।

अन्न० (स्नेह की हँसी हँसकर)—नहीं आज मुझे कुछ काम नही है। तू जा। मै ज़रा इन लोगो को समझा दूँ। तेरे उन पुराने कैटलागो का बोझ मैने तेरे नीचेवाले कमरे में भिजवा दिया है।

राजेन्द्र—बहुत अच्छा किया। तुम मेरे कमरे को क्यो उलट-पलट रही हो, अम्मा ? कितनी ज़रूरी चीज़े थीं। वह सब......

अन्न०—थीं तो क्या ? मैंने कहीं फेंक थोड़े ही दी है। नीचे ही तो भेजी है। जा देख ले जाकर।

यह कहकर वह टेबुल पर क़लम-दावात बहू के लिए सजाकर रखने लगीं। राजेन्द्र नौकरों के सामने कुछ कह नहीं सका ; परन्तु दावात-क़लम के बदले गाय-भैस की सानी करने का काम ही इस नई बहू के लिए उपयुक्त होता, यह मन ही मन सोचते हुए वह नीचे चला गया।

माता के पास से आकर वह नीचे दालान मे आकर खड़ा

हुआ और एक पपीते के पेड़ की ओर देखने लगा। एक कौआ निश्चिन्त मन से चोंच मार-मारकर पका पपीता खा रहा था।

ज्ञानेन्द्र आकर बोला, "यहाँ क्या कर रहे हो, राजन? छोटी बुआ तुम्हारे कमरे को कैसा सजा रही हैं? देखा है या नहीं? एकदम कायापलट कर दी है।"

राजेन्द्र ने क्रोधभरी दृष्टि से ज्ञानेन्द्र की ओर देखा; परन्तु इस पर भी ज्ञानेन्द्र ने चुप न होकर हँसते हुए कहा, "क्यों इसमें तुम्हारे नाराज होने की क्या बात है जो इस प्रकार देख रहे हो?"

राजेन्द्र बोला, "तब क्या आँख बन्द करके रहूँ? धुआँ तो लग नहीं रहा है।"

ज्ञानेन्द्र ने आश्चर्यभाव से कहा, "धुआँ? धुआँ क्यों लगेगा?"

राजेन्द्र और कुछ न बोला। क्षुब्ध आक्षेप से उसका मुख काला हो गया।

ज्ञानेन्द्र ने वहाँ से जाते हुए कहा, छिः! छिः! राजन, हँसी करने को और कोई बात तुम्हें नहीं मिलती।"

× × × ×

फूलशय्या की रात्रि को फूलों के साज से सजे हुए पलँग के मुलायम बिछौने पर सिंकुड़ी सुकड़ाई एक कोने में तरुण

सरला अपने हृदय की धड़कन सुनते-सुनते न-जाने कब सो गई।

संसार में प्रवेश करने के पहले पथ के साथी, इन दोनों तरुण प्राणियो, की आकांक्षा को जगा देने के लिए विलीक सहस्रों उपकरणों द्वारा नव दम्पतियों के प्रथम भाषण की रात्रि में इस घर को स्वर्ग-सुख के सम्मिश्रण करने के अनुसार ही सजाया गया था। लज्जापीड़िता सरला जब तक जागती रही अपने पतले कपड़े के घूँघट के भीतर से विस्मयविमूढ़ नेत्रो से घर की साजसज्जा को ही देखती रही। प्रतिबार करवट लेते समय उसे भय होता था कि कहीं फूल न मैले हो जायँ और वह अपराधिनी ठहराई जाय। साथ ही साथ उसे इस स्वर्ग की तुलना में अपने नाना की आडम्बरहीन शान्तिमय दीन कुटीर स्मरण हुई। प्रकाशमय फूलमय राजप्रासाद के तुल्य ऐश्वर्य अच्छा है, या वह वृक्षों की गुंजान छाया से ढका हुआ छोटा-सा ग्राम जहाँ उसके नाना की जीर्ण कुटी थी, वह अच्छा है—यह वह अच्छी प्रकार न समझ सकी। तब भी दरिद्र पीड़ित जीवन में मनुष्य जब सुख की कल्पना में भाँति-भाँति के रंग देकर सुख की छवि बनाता है, तब इससे अधिक क्या बन सकता है!

एक घड़-घड़ शब्द सुनकर सरला की निद्रा भङ्ग हो गई। उसने देखा, उसके स्वामी कमरे के बीच में खड़े हुए पाँव द्वारा

एक कौच को ठेलकर खिड़की की ओर ले जा रहे हैं। कमरे में टेबुल पर एक बड़ा जुवल लैम्प जल रहा था।

कौच को खिड़की के पास ले जाकर राजेन्द्र ने सशब्द खिड़की खोल दी और खुली हुई खिड़की के पास चट्टी रखकर वह कौच के ऊपर ही लेट गया। श्वेत कमल के तुल्य शुभ्र सुन्दर खुले हुए दोनों पाँवों के ऊपर सरला की दृष्टि पड़ी; परन्तु उसने तुरन्त ही दृष्टि हटा ली।

बाहर उस दिन चाँदनी फैल रही थी। आकाश समुद्र के मेघों की तरंगों के भीतर से चन्द्रमा का पीला मुख मूर्च्छिता सुन्दरी के मुख के समान दिखाई पड़ता था। राजेन्द्र ने एक बार भी मुख फिराकर सरला की ओर न देखा, नहीं तो उसे ज्ञात होता कि एक व्याकुल व्यग्र दृष्टि उसके मुख को कितनी श्रद्धा से देख रही है। सरला ने आश्चर्य से सोचा—यह कैसा विचित्र व्यक्ति है!

टन-टन करके रात के दो बज गये। सरला का मन तब अत्यन्त संकुचित होने लगा। वह अच्छी तरह समझ रही थी कि यद्यपि स्वामी ने उसे एक बार भी नहीं देखा परन्तु उसका इस कमरे में रहना वह अवश्य जानते है, क्योंकि तभी तो उन्होने सारी रात्रि कौच पर ही बिताई है। नहीं तो इसकी क्या आवश्यकता थी।

इतनी जल्दी बात बढ़ाने से सारे घर मे गोलमाल उपस्थित

हो जायगा, यह सोचकर ही राजेन्द्र ने यह व्यवस्था की थी।

बिछौने पर सिकुड़े हुए लेटे-लेटे सरला ने रात्रि यापन की। रात्रि के शेष प्रहर मे खिड़की द्वारा शीतल वायु ने आकर दोनों प्राणियो के तृप्त मस्तक का चुम्बन किया।

प्रातःकाल जब पूर्वाकाश भली भाँति स्वच्छ नहीं हुआ था तभी सरला उठ गई और उसने टेबुल के प्रकाश को हटा-कर रख दिया।

सवेरे के प्रकाश में सरला ने और एक बार राजेन्द्र की ओर अच्छी तरह देखा। वह तब भी कौच पर हाथ पर सिर रक्खे सो रहा था। उसके कुर्ते की बाँह समेटी हुई थी। श्वेत संगमरमर के सदृश बलिष्ठ, सुन्दर मांसपेशियो से युक्त भुजा को देखकर सरला अपने साँवले रूप की लज्जा से कुंठित होकर जल्दी से दरवाज़े के बाहर चली गई।

इतने बड़े मकान मे अब तक सन्नाटा छा रहा था। अभी कोई भी नहीं जागा था। सरला बरामदे का रेलिंग पकड़कर चुपचाप खड़ी हो गई। रेलिंग के किनारे-किनारे बहुत-से गमलों में फूलों के पौधे सजाये हुए रक्खे थे, जिनमें इस समय भी दो-चार देशी-विदेशी फूल खिल रहे थे। थोड़ी देर बाद अन्नपूर्णा ने बरामदे में आकर सरला को देखा और बोलीं, "अरे, तुम हो बहू। इतने सवेरे-सवेरे क्यो उठ गईं?" सरला सिर नीचा किये खड़ी रही। अन्नपूर्णा, राजेन्द्र उठा है या

नहीं, यह पूछने को ही थीं कि ठीक उसी समय राजेन्द्र कमरे से निकला और बिना इधर-उधर देखे एकदम बाहर चला गया। अन्नपूर्णा ने देखा कि राजेन्द्र का मुख-मंडल कुछ प्रसन्न नहीं है। आज भी उसके मुख पर कुछ आनन्द की रेखा नहीं जान पड़ती। इसका क्या कारण है? क्या लज्जा? परन्तु क्या लज्जा ऐसी ही होती है? असम्भव!

अन्नपूर्णा का स्मित और प्रफुल्ल मुख अप्रसन्नता से उदास हो गया। सरला के भाग्याकाश के तूफ़ान ने और भी गहरा होकर उसे अधिकतर भयभीत कर दिया।

छठा परिच्छेद

सरला बहुत सुन्दरी नहीं है, परन्तु उसे कुत्सित भी नहीं कह सकते। उसके मुख का रंग हाथ-पाँवों की अपेक्षा तनिक उजला है। नेत्र बड़े-बड़े जाड़े के सवेरे के फूले हुए नील पद्म की भाँति है। दृष्टि नम्र और बुद्धि प्रखर है।

वह दरिद्र के गृह से आई थी; परन्तु वहाँ सदैव से ही दरिद्रता न थी। उसके नाना ग्राम की पाठशाला के पंडित थे। उन्होने आध्यात्मिक उन्नति के लिए जितनी चेष्टा दिखलाई थी, उतनी ससार की ओर नहीं दिखा सके। परन्तु उन्होंने अपनी एकमात्र कन्या को सुपात्र के ही हाथों में सौंपा था।

जिस वर्ष सरला के पिता डिप्टीमेजिस्ट्रेट होकर मथुरा गये थे, उसी वर्ष सरला का जन्म हुआ था। सुलक्षणा कहकर ही उस समय सब लोग उसका आदर करते थे; परन्तु उसका यह आदर बहुत दिनों तक स्थायी न रह सका। सात वर्ष की होते न होते ही पितृहीना होकर वह माँ के साथ नाना के घर लौट आई।

उसके पिता के घर की अवस्था अब भी अच्छी थी। उसके पितामह हाल ही में मरे थे। उसके चाचा लोगों ने कन्या दाय ग्रस्त विधवा भावज की इतने दिन तक कोई खोज-ख़बर नहीं ली थी; परन्तु अब कन्या का सम्बन्ध एक बड़े ज़मींदार के यहाँ ठहर जाने पर अकस्मात् उन लोगो का स्नेह-समुद्र उमड पड़ा। उन्होंने चिट्ठी देकर एक आदमी को भेजा, जिसमें लिखा था कि यद्यपि सरला के पिता नहीं है, परन्तु उन लोगों के रहते हुए भी कन्या का विवाह उसके पिता के घर मे न हो पावेगा, यह उन लोगो का बहुत दुर्भाग्य होगा। अतः अविलम्ब वह लोग इस आदमी के साथ यहाँ चली आवें, इत्यादि।

सरला की विधवा माता ने पूरे तेज के साथ उत्तर दिया—तुम लोगों को कितना ही दुख क्यों न हो, इस निर्धन और अनाथ की कन्या का विवाह दरिद्र की भाँति ही होगा। उसके चाचा लोग जो आज इस प्रकार की दया दिखलाकर उसे चिर-ऋणी बना लेंगे, यह नहीं हो सकता। यह उन्हें स्वीकार नहीं है।

जब वह मनुष्य उत्तर लेकर लौटा तो सरला के चाचाओं ने वह पत्र समाज के दस-पाँच बड़े-बड़े नेताओ को दिखाकर कहा कि हम लोग क्यो नहीं आज तक अपनी भावज और भतीजी की खबर ले रहे थे, उसका यह प्रमाण आप लोगों

के सम्मुख है। इसी रूखे बर्ताव के कारण हम आरम्भ से ही उनसे अलग रहते है।

अनाथ विधवा की इतनी लम्बी-चौड़ी बातें भला कौन सह सकता है। अतः इन्हीं की बात सच है। यह उस समाज के अगुओं को मान लेने मे कुछ भी विलम्ब न लगा। सरला की माता का इतना तेज था और जन्माधिकार के सूत्र से सरला ने भी उसमें से कुछ पाया था।

परन्तु यह तो वस्तु ही दूसरी है। यह अहंकार नहीं है। स्वामी के चित्त में रूपहीना सरला ने तनिक भी स्थान न पाया था। पथश्रान्त पथिक जिस प्रकार एक आश्रय से हटा दिया जाय और एक देश से दूसरे देश मे जाकर देखे कि वहाँ भी उसके लिए सब द्वार बन्द है तब उसके मन की जो अवस्था होती है, सरला की दशा भी ठीक उसी तरह की थी।

विवाह के उपरान्त एक मास बीत गया। राजेन्द्र पढ़ने के लिए लखनऊ अपने होस्टल में चला गया था। उसी फूल-शय्या के दिन को छोड़कर राजेन्द्र ने स्त्री के साथ फिर देखादेखी न की। यह बात अन्नपूर्णा जानती थीं; परन्तु सबके सामने यही कहती थीं कि पढ़ने के समय लड़का और बहू अधिक मिलें, यह स्वामी की इच्छा नहीं है। इससे सरला के दुर्भाग्य की लज्जा कुछ ढक गई थी; परन्तु सभी मनुष्य तो इस बात पर विश्वास न कर सकते थे।

इस वर्ष की पढ़ाई कठिन थी और देर तक घर पर ठहरने में हानि हो सकती है, यह कहकर राजेन्द्र लखनऊ चला गया। सरला दूसरे खंड के कमरे में खिड़की के छड़ को पकड़े खड़ी-खड़ी देख रही थी। नीचे की सीढ़ी के सामने गाड़ी खड़ी है।

माता-पिता को प्रणाम करके राजेन्द्र हँसते मुख से ही गाड़ी में जाकर बैठ गया। उसके सुनहरे चश्मे से ढकी हुई आँखें यदि भूल से भी एक बार ऊपर उठतीं तो वह देखता कि सरला का व्यग्र व्याकुल मुख, सब रुधिर सूखकर, कैसा सफ़ेद हो रहा है।

अन्नपूर्णा के ऊपर आने से पहले ही सरला आँचल से अपनी डबडबाई हुई आँखें पोंछकर जल्दी से जाकर छोटे बच्चे को प्यार करने बैठ गई। इस घर में यह शिशु ही सबसे अधिक उसका साथी हो गया था। जब तब वह इसी से अपना चित्त बहलाती थी।

सीढ़ी चढते-चढ़ते अन्नपूर्णा ने कहा, "अरी सुखिया, बच्चे के दूध पिलाने का समय बीत गया। जल्दी से बोतल में दूध भर ला। जा जल्दी।"

सरला दूध की बोतल हाथ में लिये बच्चे को दूध पिला रही थी। यह देखकर भी अन्नपूर्णा सन्तुष्ट न हुई। गम्भीर मुख करके उन्होंने कहा, "ओह ! तुम दूध पिला रही हो !"

सरला सास के मुख की ओर देखकर अवाक् रह गई।

दूध पिलाने के समय पर उसने दूध पिला दिया, इसमें उसका क्या अपराध हुआ—यह उसकी समझ में न आया। फिर उसने सोचा—अभी-अभी हाल में ही पुत्र के परदेश जाने से सास का मन भारी हो रहा है। इसी से ऐसा कह रही हैं।

बच्चे को दूध पिलाकर, गोद में लेकर, सरला अपने कमरे मे चली गई। सरला के आने से पहले यह कमरा राजेन्द्र के ही अधिकार में था, अब भी इसलिए उसमें वह चिह्न वर्तमान थे। कमरे की एक ओर की दीवार पर तीनो बहन-भाइयों का एक फ़ोटो टँगा था। राजेन्द्र और भूपेन्द्र के बीच में फ़्राक पहने हुए खुले बालो को गुलाबी रिबन से बाँधे बालिका सुलता खड़ी थी। सुलता को सरला ने देखा नहीं था; परन्तु उसकी गोद का यह बच्चा सुलता की ही सन्तान था। गोद के सुन्दर सुपुष्ट बच्चे की ओर देखकर उसकी माँ से उसका मुख मिलाने में सरला को बहुत सन्तोष हुआ।

थोड़ी देर बाद बच्चे की दासी उसे लेने आई। गुलाब के फूल की तरह नरम कोमल शिशु को हृदय से लगाकर, चुम्बन करके सरला ने उसे दासी की गोद में दे दिया। उसके उपरान्त चुपचाप ख़ाली हाथ वह आकर पलँग पर बैठ गई और कुछ विचार करने लगी।

घर के एक दूसरे कोने मे राजेन्द्र का एक वर्ष पहले का खिचा हुआ फ़ोटो लटक रहा था। फ़ोटो की ओर देखकर वह जैसे स्वामी को पहचानने की चेष्टा करने लगी। फ़ोटो की छाया अलमारी के शीशे पर पड़ रही थी; परन्तु वह मुख तो आजकल की भाँति गम्भीर मुख नहीं है। सरला ने इस घर की पुरानी दासी के मुख से सुना था, यह फ़ोटो राजेन्द्र ने सुलता के विवाह के दूसरे दिन खिंचवाया था और उस समय हँसकर कहा था, एक और फ़ोटो अपने विवाह के अगले दिन खिंचवाऊँगा।

इसी प्रकार और भी कुछ दिन बीत गये। बाहर की कोई विशेष बात सरला के कान तक न पहुँच पाती थी। वह नहीं समझ सकती थी कि नानाजी ने उसे अब तक ले जाने का नाम क्यों नहीं लिया।

लड़के को बहू की कितनी परवाह है, यह समझने में अन्नपूर्णा को ज़रा भी देर न लगी। अतः उन्होंने पहले-पहले जितना आदर यत्न सरला के लिए दिखाया था, थोड़े दिन बीतते न बीतते उनका यह आदर शेष वर्षा की कीचड़ की भाँति सूखकर कठिन हो गया। जिसे पाकर पुत्र सुखी न हो सका, ऐसी बहू की क्या आवश्यकता है? इस बहू में न तो रूप है और न गुण है। बराबरी के घर की लड़की भी तो नहीं है। अस्तु, इस बन्धु-बान्धवहीन घर में दिन-रात

स्नेह और शासन की जो कर्ता है, उनसे भी कुछ पाने की आशा सरला को नहीं रही। वह भी उसके प्रति विमुख हो गई हैं।

उसका समय काटने का एकमात्र सहारा यह छोटा भानजा था। सात-आठ महीने के इस बालक के साथ बात-चीत करके वह, जितना हो सकता था, अपने दुख को भुलाने की चेष्टा करती थी। फलस्वरूप अन्नपूर्णा के हाथो से निकलकर इस छोटे बच्चे की देखरेख का सारा भार एक-बारगी ही सरला के हाथो मे आ गया था।

रात्रि को बच्चे की दासी चमेली सरला के कमरे में ही सोती थी और कुछ बातचीत भी करती रहती थी। चमेली ने एक दिन पूछा, "हाँ जी बहू तुम्हारा मन माँ के घर जाने को नहीं करता क्या?"

सरला की आँखो से पानी गिरने ही वाला था। कठिनता से उसे रोककर सूखे मुख से बोली, "ना। मन क्यो करेगा?"

चमेली ने व्यंग्य के साथ कहा, "ओहो! मन कैसे करेगा! माँ के घर नहीं जाओगी?"

सरला ने उदास स्वर से उत्तर दिया, "तो जब जाऊँगी देखा जायगा।"

चमेली ने कहा, "सो तो है ही। तुम्हारे नानाजी ने

तो तुम्हें ले जाना चाहा था ; परन्तु माँजी राजी नहीं हुईं। यह लोग तुम्हे अभी नहीं भेजेंगे।"

सरला ने कुछ उत्तर न दिया। बहुत दिनों से माँ और नानाजी की कुछ खबर नहीं मिली थी। दासी के मुख से यह समाचार सुनकर आज उसे तृप्ति हुई। नानाजी तो ले जाना चाहते है। उनका क्या दोष है? यह लोग यदि न भेजें तो वह दूसरी बात है।

बच्चे के लिए सरला के कमरे मे रात भर लालटेन जलती थी, परन्तु दासियाँ उसे साफ करना भूल जाती थीं। सरला तो बडे आदमी की पुत्री न थी। दासियों के साथ व्यर्थ में बकझक न करके वह एक दिन अपने हाथ से ही राख मलकर चिमनी साफ कर रही थी। इसी समय धीर गम्भीर जूते के शब्द से वह चौंककर सम्मानपूर्वक खड़ी हो गई। सामने ही श्वशुर खड़े थे।

ऐसे समय श्वशुर कभी आते-जाते न थे। जगदीश बाबू स्नेह स्निग्ध नेत्रों से सरला की ओर देखने लगे। मालूम होता है, उन्हें अपनी मृत पुत्री सुलता की याद आ गई थी। वह निःशब्द वहाँ से चले गये।

दासियों ने वैसे ही आकर सरला के हाथ से शीशा ले लिया। उनमे से किसी का भी मुख प्रसन्न न था। अन्नपूर्णा ने भी तीव्र श्लेषपूर्ण शब्द उसी दिन से सरला के लिए

उपयोग करने आरम्भ कर दिये। उन्होंने कठोर स्वर से कहा, "श्वशुर को घर की व्यवस्था, दिखाकर उन्हें अपदस्थ करने की क्या ज़रूरत थी? जैसे छोटे मन की है, वैसा ही परिचय देना चाहिए न?"

लज्जा से सरला का मुखमंडल लाल हो गया। वह चुप बैठी रही। यदि वह जानती कि इसका यह परिणाम होगा तो कभी चिमनी पोछने न बैठती। अन्नपूर्णा के तीव्र वाक्य-बाण खाते-खाते वह निःशब्द दूसरे कमरे मे चली गई और बच्चे को प्यार करने लगी। अबोध शिशु की हर्षभरी किलकारी से उसका मन दुश्चिन्ता के विचारों के बोझ से हल्का हो जाता था।

सन्ध्या समय जब अन्नपूर्णा पूजा करने बैठीं तब सरला सास के विमुख मन को प्रसन्न करने के लिए फिर उनके पास जाकर बैठ गई और कितनी देर में वह अपना गाम्भीर्य छोड़कर प्रसन्नमुख से उसे किसी काम का आदेश देकर कृतार्थ करेंगी, इसकी प्रतीक्षा करने लगी।

सातवाँ परिच्छेद

न्ध्या समय की सुनहरी धूप पश्चिम ओर में फैली हुई समस्त ऊँचे-ऊँचे पेड़ो की चोटियों को सोने के मुकुट पहनाकर खेल कर रही थी। सरला स्नान करके आई और विपिन को कपड़े पहनाने लगी। रूखे बालो के जूड़े और अर्द्धमलीन साड़ी मे भी उसका यौवन पुष्ट लावण्य पत्तों से ढके हुए फूल की भाँति प्रतीत होता था।

शिशु विपिन अब चलना सीख गया है। वह दूध पीते और कपड़े पहनते समय खूब गोलमाल मचाकर सरला को व्यस्त कर डालता है।

एक स्टूल पर बैठकर सरला उसे जूते और मोज़े पहना रही थी। सहसा भूपेन्द्र ने आकर विपिन को गोद में उठा लिया। भूपेन्द्र की गोद में जाकर विपिन अवाक् होकर उसका मुँह देखने लगा। भूपेन्द्र सरला को प्रणाम करके और विपिन को गोद में लेकर अपनी माँ के कमरे में चला गया। माथे पर

कपड़ा ढककर सरला चुप खड़ी थी। अब वह भी कमरे के अन्दर चली गई।

भूपेन्द्र अभी-अभी लखनऊ से आया था। सरला के हृदयरक्त में न मालूम क्यों एक तूफ़ान उठने लगा। किसी एक मूढ आशा से वह बाहर की ओरवाली खिड़की से अकारण व्यग्र नेत्रों द्वारा उस ओर देखने लगी, परन्तु उधर खाली बाग़ ही दिखाई देता था। तब क्या भूपेन्द्र अकेला ही आया है?

भूपेन्द्र को देखते ही अन्नपूर्णा बोलीं, "हाँ रे, क्या तू अकेला ही आया है? राजन कहाँ रह गया?"

भूपेन्द्र—भाई साहब उधर से ही नैनीताल चले गये। कहते थे, वहाँ से लौटकर घर आऊँगा।

अन्न०—(खिन्न होकर) क्यों, क्या एक बार घर आकर फिर नैनीताल जाना नहीं हो सकता था? नैनीताल कहीं भागा नहीं जा रहा था। कितने दिन से घर नहीं आया! मै तो उसका रास्ता देख रही थी।

भूपेन्द्र—तो मैं क्या करूँ? मैने तो कहा था, पर वह किसी की बात सुनते कब है? उनके दो-एक मित्र जा रहे थे, उन्हीं के साथ वह भी चले गये। मै भी जाना चाहता था; पर मुझसे कह दिया कि तू घर जा, नहीं तो अम्मा नाराज़ हो जायँगी।

अन्न०—हूँ ! अम्मा नाराज़ हो जायेंगी ! अम्मा की नाराज़ी का तो उसे बहुत डर है न ? यदि यह विचार होता तो वह अवश्य आता । अब तो वह बड़ा होकर पहला राजन थोड़े ही रहा है ? अब उसे बाहर ही बाहर अच्छा लगता है । उसे अम्मा की अब क्या परवाह है ?

भूपेन्द्र—(हँसकर) मै भी तो घूमना पसन्द करता हूँ । केवल बाबूजी के डर के मारे नहीं जाता, कभी वह पीछे क्रोध करें ।

अन्न०—कहाँ ? वही तो आजकल कुछ क्रोध नहीं करते । यही देखो राजन कितना घूमता फिरता है, उसे वह कुछ नहीं कहते । नहीं तो मुझे सोच ही क्या था ?

भूपेन्द्र—क्यों, हम लोग डाँट खाते हैं, तो तुम्हें प्रसन्नता होती है । वाह यह अच्छी रही ।

अन्नपूर्णा भी ज़रा हँसकर बोलीं, "डाँट का काम करने पर डाँट मिलेगी ही । नहीं तो तुम लोगों के पर जो निकल आयेंगे ।"

भूपेन्द्र बोला, "तो वह पर मेरे नहीं, भाई साहब के निकले है । उन्हे जितना चाहे कहो । मुझे क्यों डाँटती हो ?"

सरला भूपेन्द्र के लिए जल-पान की चीजें लाकर अन्नपूर्णा के पास रख गई । खाने के लोभ और अन्नपूर्णा के कहने से प्रसन्न होकर विपिन भूपेन्द्र के साथ खाने बैठा । जल-पान करके भूपेन्द्र ही उस दिन विपिन को घुमाने ले गया ।

सन्ध्या के बाद सरला नित्य अपनी सास के पाँव में तेल लगाया करती थी। सरला के आने से पहले दासी यह काम किया करती थी। जब से सरला आई है, उसने यह काम अपने हाथ मे ले लिया था। परन्तु वह यह सब काम करके भी भाग्य के दोष से सास को प्रसन्न नहीं रख सकती थीं। अब भी दिनोंदिन वह सरला के प्रति निष्ठुर बर्ताव करे जा रही थीं।

राजेन्द्र के घर न आने के कारण अन्नपूर्णा का मन उस दिन प्रसन्न नहीं था। जो राजेन्द्र कुछ दिन पहले माँ की आज्ञा लिये बिना घूमने तक न जाता था, वही राजेन्द्र आज कॉलेज की छुट्टियाँ हो जाने के बाद भी घर नहीं आया, उसका कारण सरला के सिवा और कुछ नहीं है। मुख से कुछ न कहकर भी अन्नपूर्णा अपने मन ही मन मे फूल रही थीं। सरला भी सिर झुकाकर चुपचाप उनके पैरों पर हाथ फेर रही थी। एक लम्बी साँस लेकर अन्नपूर्णा बोलीं, "बस रहने दो। हो चुका।"

सरला ने हाथ हटा लिया।

अन्नपूर्णा बोलीं, "ओह ! तुम्हारे हाथ में यह इतने काँटे-से काहे के है ? मालूम होता है, बाप के यहाँ झाड़ लगाया करती थीं, उसी से हो गये हैं। हाय रे भाग्य !"

सरला ने आड़ में एक बार अपने हाथों की ओर देखा और कुछ उत्तर न दिया।

अन्नपूर्णा ने फिर व्यंग्य के स्वर से कहा, "लोग लड़कियों से घर में नौकर-चाकर का काम करवाते है, यह मुझे आज तक मालूम न था।"

सरला फिर भी कुछ न बोली। वह यह कहने का साहस नहीं कर सकती थी कि यह अभियोग बिलकुल झूठा है। माँ-बाप तथा नाना के घर में वह आदरपूर्वक रक्खी ही गई थी, दासी नहीं थी। उसे कभी भूलकर भी झाड़ू पकड़ने का काम नहीं करना पड़ा था, जिससे उसके हाथ में काँटे पड़ सकते।

सास के पाँव गीले तौलिये से पोंछकर उसने स्प्रिट लैम्प जलाया और विपिन के लिए दूध गर्म करने लगी। उसके विक्षुब्ध मन को विश्राम करने का ज़रा भी अवकाश नहीं है। अभी बहुतेरे काम करने को बाकी हैं। दूध गर्म करके उसने विपिन की खोज की तो मालूम हुआ, वह अभी तक भूपेन्द्र के पास ही है। वह दासी को विपिन को लेने के लिए भेजकर फीडिंग बोतल में दूध भरने लगी।

सोते हुए विपिन को गोद में लिये और फूलों का एक बड़ा-सा गुलदस्ता हाथ मे लिये भूपेन्द्र घर में आया और बोला, "भाभी, विपिन सो गया है। उसका बिस्तरा बिछा दो।"

सरला ने झटपट विपिन का बिस्तर ठीक करके उसे भूपेन्द्र की गोद से लेकर सुला दिया।

भूपेन्द्र ने इधर-उधर देखकर कहा, "भाभी, तुम्हारे कमरे में तो एक भी फूलदान नहीं है। इसे काहे में रक्खूँ? भाई साहब की अलमारी में तो बहुत-से फूलदान थे। वह सब कहाँ है?"

सरला की इच्छा हुई कि कह दे, यहाँ फूल रखने की कुछ आवश्यकता नहीं है; परन्तु यह सोचकर चुप हो रही कि कदाचित् सास यह सुनकर नाराज़ हों। उसने एक फूलदान अलमारी से निकालकर, झाड़-पोंछकर, मेज़ पर रख दिया।

गुलदस्ता उसमें रखकर भूपेन्द्र ने कहा, "क्या मुझसे बोलोगी नहीं, भाभी? मुझसे बात करने में तो कुछ हानि नहीं है।"

सरला ने फिर भी कोई बात न की। उसे सास के क्रोध का बहुत भय था। उनकी आज्ञा के विना वह भूपेन्द्र से बोलना उचित न समझती थी।

सरला के कमरे में भूपेन्द्र की आहट पाकर अन्नपूर्णा बाहर आईं और बोलीं, "लल्लू है क्या?"—यह कहती हुई वह सरला के कमरे के अन्दर चली आईं। भूपेन्द्र नाराज़ी का भाव दिखाकर बोला, "देखो अम्मा, तुम मेरा यह सुन्दर नाम सबके आगे न लिया करो।"

सरला विस्मय से अवाक् हो रही थी। आज दूसरी बार

सास सरला के कमरे में आई थीं। पहली बार उस अशुभ मुहूर्त में घर सजाने के लिए वह इस कमरे में आई थीं। तभी से उन्होंने वहाँ आना छोड़ दिया था। जिस दिन सरला को उसके श्वशुर ने लालटेन पोंछते देखा था, उस दिन भी अन्नपूर्णा द्वार पर ही से बकझक कर लौट गई थीं। इतने दिन के बाद वह इस कमरे के अन्दर आकर चौकी पर बैठ गईं।

भूपेन्द्र ने फिर कहा, "तुम भाभी से कह दो अम्मा कि मुझसे बोला करे। तब वह बोलेंगी।"

अन्नपूर्णा ने सरला से कहा, "बोलो जी बहू। इसके साथ बात करने से भी तुमको कुछ सभ्यता आ जायगी।"

सरला का मुख लाल हो गया। गरम रक्त के उबाल से कान तक अग्नि-सी फैल गई। इसी को सभ्यता और भद्रता कहते है। वह दूध की बोतल को झुककर देखने लगी।

अन्नपूर्णा—(फूलों को देखकर) यह कौन लाया है? लल्लू लाया है शायद।

भूपेन्द्र—हाँ, परन्तु भाभी को इसके लिए मुझे धन्यवाद देना उचित था।

अन्न०—तो इस कमरे में क्यों लाया? अपने में रखता। यहाँ तो पड़े-पड़े फूल सूख जाने के सिवा और क्या होगा?

भूपेन्द्र—और मेरे कमरे में रहने से शायद सदा ताजे ही रहेंगे।

सरला ने किसी बात का भी उत्तर नहीं दिया। इस किशोर लड़के के व्यवहार से उसके मन में तनिक आनन्द का संचार हुआ था, परन्तु उसने उसे बलपूर्वक आधे रास्ते से ही लौटा दिया। वह सोचने लगी—मिथ्या, मिथ्या, यह सभी लोग मिथ्या है! यह निर्मम और पाषाण है, नहीं तो उसके स्वामी के मुख से भी तो सदा प्रफुल्ल हँसी निकलती रहती है। वह हँसी क्या उसके भाग्य में नहीं है? उसके लिए वह भी सूख गई। उसके आत्मगत जन्म-जन्मान्तर के संस्कार ने उसके भाग्य को ही दोष दिया। और वह दोष दे ही किसे सकती थी!!

कमरे की खिड़की बन्द करके सरला दक्षिण की ओर-वाले लम्बे बरामदे में शीतलपाटी बिछाकर लेट गई। थोड़ी दूर सामने दुर्गा-मन्दिर पर हाल ही के फेरे हुए चूने का सफेद रंग अन्धकार में भी चमक रहा था। दशहरा निकट है। सरला पिछले वर्ष की इन दिनो की बात सोचने लगी। तब तक उसका विवाह नहीं हुआ था। सैकड़ो प्रकार की फ़रमायशें करके उसने अपने नाना को तंग कर डाला था। बड़ी हो जाने पर वह कुछ संकोच करने लगी थी, इसलिए उसके नानाजी कितने आदर और प्रेम से पूछा करते थे, "बता बेटी, तुझे क्या चाहिए?" और आज ... ...।

एक दासी आकर कहने लगी, "बहू, बच्चे के दूध के लिए आज क्या होगा?"

सरला—(आश्चर्य से) क्यों होगा क्या? दूध तो रक्खा है।

दासी—हाँ था तो, परन्तु वह दूध तो अब बच्चे को पिलाया नहीं जा सकता। बिल्ली ने मुँह डाल दिया।

दासी की बात का विश्वास न करके सरला ने कहा, "दूध तो ढका रक्खा था। बिल्ली ने कैसे जूठा कर दिया?"

दासी कुछ रुककर बोली, "मै ढकना भूल गई थी, बहू।"

सरला—(झुँझलाकर) तब जाओ, अम्माजी से कहो।

दासी—अम्माजी से? अम्माजी तो बहुत नाराज़ होंगी।

सरला—इस तरह कहने से क्या होगा? विपिन पीयेगा क्या? जाओ कहो। नाराज़ होंगी तो हो लेंगी।

दासी चली गई।

जगदीश बाबू उस समय भोजन करने बैठे थे। वह अपने अन्तःपुर की बहुत कम ख़बर रखते थे। परन्तु हाँ, जब कभी कोई त्रुटि उनके सामने पड़ जाती थी तो उसको वह तुरन्त ही मिटा देते थे। इस पीड़ित लांछिता निर्धन की कन्या को उदारता दिखाकर वह बधूरूप में अपने घर लाये थे और उससे स्नेह भी करते थे; परन्तु उसके आदर-सम्मान क़ा जो भार गृहिणी के ऊपर था, वह कहाँ तक पूरा हो रहा है, यह उनको मालूम न था।

दूध नष्ट होने की खबर गृहिणी के कान में पहुँचते ही वह क्रोध से जल उठीं। जगदीश बाबू ने शान्त भाव से कहा, "जब दूध नष्ट ही हो गया है, तो अब क्रोध करने से क्या लाभ होगा ?"

अन्न०—(तीखे स्वर से) हूँ! नष्ट नहीं तो और क्या होगा ? गिलास भर-भरकर पीने से भी तो कहा जा सकता है कि नष्ट हो गया। कैसे कुसमय मे लड़के का विवाह किया था !"

जगदीश बाबू ने धमकाकर अन्नपूर्णा को चुप करा दिया और अपने सामने का दूध का कटोरा सरकाकर कहा, "ले जाओ यह दूध। मुझे दूध की ज़रूरत नहीं है।"

महाराजिन खड़ी थी। मालिक के थाल के सामने से दूध उठा लेने मे उसका हाथ आगे न बढ़ता था। बेचारी निरुपाय भाव से मालकिन के मुख को देखने लगी। उन्होंने कहा, "रहने दो उस दूध को। घर में और दूध है।"

कड़े हुक्म के स्वर से जगदीश बाबू ने कहा, "नहीं, यही दूध ले जाओ। मैं दूध नहीं पीना चाहता।"

अतएव अन्नपूर्णा के विनती के स्वर और मालिक के गर्जन से सारे नौकर और दासियों के दल मे भी घबराहट पड़ गई। इस प्रकार की अशान्ति की लहर इस घर मे सरला के आने से पहले बहुत कम आती थी। सभी सरला को अशान्ति का मूल ठहराने लगे।

घर के अन्दर बैठी हुई सरला की आँखों से झरझर करके आँसू टपक पड़े। दिनोंदिन एक तुच्छ घटना को लेकर दास-दासियों तक के ऊपर वह भारस्वरूप पड़ गई है। हाय परमात्मा, यह कैसा ग्रह का फेर है! हाय किस प्रकार वह अपने विमुख भाग्यदेवता को प्रसन्न करके जीवन-यात्रा के इस दुर्गम पथ को सुगम कर सकेगी! उन्हे कौनसी पूजा प्रिय है? सोचते-सोचते चिन्ता का बोझ उतारकर फेंकने की चेष्टा करने के लिए वह तनिक हँसकर उठ खड़ी हुई। दूर हो यह दुर्भावना, भाग्य में जो बदा है, वह होगा ही। अनर्थक दुख करने से तो हँसी-खुशी सब कुछ सहन करना ही उत्तम है।

आठवाँ परिच्छेद

सवेरे के प्रकाश की अस्पष्ट रेखा जँगले के जोड़ की सन्धि से आकर सरला के मुख पर पड़ी जिससे उसकी नींद टूट गई । वह सिटपिटाकर उठ बैठी और मन मे सोचने लगी कि ओह, इतना दिन चढ़ आया । फिर दूसरे ही क्षण उसने मुँह फेरकर देखा कि विपिन अभी तक हाथ-पैर फैलाकर निश्चिन्तता से सो रहा है और उसकी दासी चमेली की विपुल देह भी घर में फैली पड़ी है । बाहर की ओर पक्षियों के प्रभात के मधुर कलरव में उसकी निःश्वास से तनिक भी व्याघात न पड़ा । और दिन विपिन ही सबसे पहले जागा करता था । सरला समझी तब तो मालूम होता है, अभी अधिक देर नहीं हुई है ।

पहले तो सरला ने बालसूर्य की ओर देखकर तेंतीस कोटि देवताओं के चरणों में प्रार्थना की जिसमें उसके कारण घर में आज फिर किसी पर विपद् न पड़े और यदि वह अनिवार्य हो और पड़े भी तो वह उसे सहन करने की शक्ति प्रदान करें ।

उसके बाद विपिन की नींद टूटने के भय से, धीरे-धीरे पाँव रखती हुई, वह कमरे से बाहर चली गई।

भंडार-घर के एक कोने मे एक स्टोव रक्खा था। वह बहुत दिनों से किसी काम में न आया था। भूपेन्द्र उसे नौकर से साफ़ कराकर चाय बनाने की व्यवस्था कर ही रहा था कि तुरन्त स्नान करके आती हुई सरला पर उसकी दृष्टि पड़ी। वह बोला, "भाभी, तुम्हीं ज़रा चाय बना दो न? ज़रा जल्दी करना, नहीं तो बाबूजी को देर हो जायगी।"

सरला ने जल भरा बरतन स्टोव पर रख दिया। एक छोटे स्टूल पर बैठकर भूपेन्द्र देखने लगा कि चाय कितनी देर में तय्यार होती है।

ज़रा देर खाली हाथ बैठकर भूपेन्द्र दियासलाई का बक्स हाथ में लेकर, एक-एक करके उसकी बत्तियाँ स्टोव में लगाकर जलाने लगा। जब सारी बत्तियाँ जल गईं तो उसने एक पुरानी चिट्ठी पाकेट से निकालकर आग के आगे रख दी। आधी चिट्ठी जल जाने पर सरला ने कहा, "उसे क्यों जला रहे हो? क्या वह काम की नहीं है?"

भूपेन्द्र—(हँसकर) नहीं, वह ज़रूरी नहीं है। एक पुरानी चिट्ठी है।

सरला—क्या तुम्हारी ही लिखी है?

भूपेन्द्र—(**हँसकर**) नहीं। मालूम होता है, तुम मेरा लिखना पहचानती नहीं हो। वह तो भाई साहब का हैंड-राइटिंग है। क्या तुमने कभी नहीं देखा है?

सरला के मुख से और कोई बात न निकली। सत्य ही वह लेख देखने का सौभाग्य अभी तक उसे प्राप्त नहीं हुआ है। इसके अतिरिक्त उस मनुष्य को ही उसने कितनी बार देखा है! पत्र की बात तो दूर रही।

सिर झुकाकर हाथ के काम में बहुत मनोयोग करने का भाव करके सरला की व्यग्र दृष्टि भूपेन्द्र की आँख बचाकर उस लेख को अच्छी तरह देखने का सुयोग खोजने लगी।

भूपेन्द्र—(**चारों ओर देखकर**) विपिन क्या अभी तक सोकर नहीं उठा?

सरला—अभी तो नहीं उठा, परन्तु अब उठता ही होगा।

भूपेन्द्र—रात को किसके पास सोता है? शायद तुम्हारे ही पास सोता है। अच्छा साथी पाया है और चाहे जो कुछ भी हो।

सरला—तभी तो समय कटता है।

भूपेन्द्र—मैं समझता हूँ समय काटने का तुम्हारे पास और कुछ साधन नहीं है। किताब-विताब नहीं पढ़ा करतीं। उससे तो ख़ूब वक़्त कटता है।

सरला—कटता तो है, परन्तु मिले कहाँ से।

हूँ। जब मर जाऊँगी, तब चाहे वह घर आवे या न आवे। मैं कुछ कहने न आऊँगी।"

सरला सिर झुकाये बैठी थी। गम्भीर व्यथा से उसका मुख काला हो रहा था। अपने वेदनालांछित मुख को छिपाने के लिए ही उसने अपने माथे के कपड़े को और भी नीचा कर लिया। उसकी बार-बार यह इच्छा होती थी कि सब कुछ फेंक-फाँककर घर मे जाकर लेट जाय; परन्तु ऐसा करने से तो उसके अपराध की मात्रा कम न होगी। भय था कहीं और अधिक न हो जाय।

भूपेन्द्र कुछ देर तक राजेन्द्र की तुलना मे अपने को अच्छा बताकर बाहर चला गया। जाते समय कहता गया, "सुनो अम्मा, भाई यदि घर न आये तो मै भी कलकत्ता चला जाऊँगा। वाह यह अच्छी रही, वह तो बाहर-बाहर मौज करते फिरे और हम घर मे पड़े सड़ते रहें! यह नहीं होगा। तुम बाबूजी से कह देना, हाँ।"

अन्नपूर्णा ने उत्तर दिया, "जाना हो तो जा। मै उनसे कहने नहीं जाऊँगी।"

भूपेन्द्र बोला, "नहीं कहने से तो वह खूब जाने देंगे। अच्छा, कलकत्ता नहीं तो बनारस जाऊँगा। वहीं के लिए कहना। बोलो कहोगी?"

अन्नपूर्णा का मन बिगड़ रहा था। उन्होंने चिढ़कर कहा, "अच्छा, जब जायगा तब देखा जायगा।"

सरला के मन में सारे दिन यही विचार उठता रहा। यदि नानाजी एक बार फिर उसे ले जाने की चेष्टा करें तो वह थोड़े दिन वहीं जाकर अपने जले हुए मन को ठंडा कर आवे। परन्तु सास उसे भेजना स्वीकार करें तभी तो। उन्हे तो अनेक आपत्तियाँ हैं और इसके सिवा विपिन भी तो है।

इस समय सरला यदि कुछ समय के लिए कहीं चली जाय तो उसे बहुत शान्ति मिले; परन्तु उसके मन और कर्तव्य में मेल नहीं था। विपिन के प्रति उसका जितना स्नेह था, उससे कहीं अधिक कर्तव्य था। कर्तव्य के लिए उसने अपने स्वार्थ की बलि देना ही उचित समझा। इसके अतिरिक्त दूसरा उपाय नहीं था।

इस घर के मनुष्यो से उसे कुछ लेने का अधिकार हो या न हो; परन्तु उसका जो कुछ उन्हे देने का अधिकार है, उसमें वह कमी क्यों करेगी। और, इस विषय मे घरवाले उसकी तनिक-सी त्रुटि भी सहन नहीं कर सकते। उनकी फ़ैली हुई हथेली को भरना ही पड़ेगा। वह लोग यह नहीं जानना चाहते कि उसके भंडार में कितनी जमा है और वह उसमें से कितना दे सकती है।

दोपहर को सरला कुछ सिलाई लेकर बैठी ही थी कि अन्नपूर्णा ने उसके कमरे में प्रवेश किया।

सरला विस्मित होकर उनकी ओर देखने लगी। अन्नपूर्णा ने पूछा, "बहू, तुम्हारे पास कुछ पोस्टकार्ड या लिफ़ाफ़े हैं?"

सरला ने नम्रता से उत्तर दिया, "जी, हैं। ले आऊँ ?"

अन्नपूर्णा दीवार की ओर देखकर न-जाने क्या सोचने लगीं। क्षण-भर बाद बोलीं, "नहीं, मुझे तो नहीं चाहिएँ। तुम एक काम करो। ज़रा अच्छी तरह से नम्रतापूर्वक राजेन्द्र को एक चिट्ठी लिख दो।"

क्षोभ और लज्जा से सरला का मुँह लाल हो गया। वह गर्दन झुकाकर प्राणपण से सिलाई में जी लगाने की चेष्टा करने लगी; परन्तु सिलाई उसके मन को ग्रहण करना नहीं चाहती थी। अन्नपूर्णा उसके लज्जापीड़ित मुख की ओर दृष्टिपात न करके बोलीं, "ख़ूब नम्रता से लिखना। समझीं। तुम्हारे अच्छी तरह से चिट्ठी लिखने से वह आ भी सकता है।"

अन्नपूर्णा के बारम्बार आज्ञा देने के उत्तर में सरला क्या कहे वह यह सोच न सकी, परन्तु पत्र लिखने का काम कितना अपमानजनक और दुस्सह होगा, यह वह समझती थी। वह किसको चिट्ठी लिखे और किसलिए लिखे ? सन्ध्या के धुँधले प्रकाश की भाँति वह अपनी उदास आँखों को ऊपर करके बोली, "मैं नहीं लिख सकूँगी, माताजी।"

अन्नपूर्णा ने मानों कोई असम्भव बात सुनी हो। वह अवाक् होकर एक क्षण भर चुप रह गईं। फिर बोलीं, क्यों नहीं लख सकोगी ? जाओ-जाओ, जाकर एक चिट्ठी लिख दो।"

सरला ने इस बार खूब दृढ़ स्वर से कहा, "मुझसे यह काम नहीं हो सकेगा।"

अन्नपूर्णा गरज उठीं, "क्यो नहीं हो सकेगा ? अहंकार ! ओहो आपको अहंकार हुआ है ! यदि नहीं लिख सकोगी तो तुम्हे लेकर मै क्या करूँगी। ज़रा बताओ तो।" सरला चुप रही। अन्नपूर्णा कहती गईं, ऐसी अभिमानिनी बहू लेकर मेरा घर नहीं चल सकता। जा मर। जो खुशी हो जाके कर। इन्हीं गुणों से तो ऐसा ज़ोरदार भाग्य है !"

तीव्र तिरस्कार की आग की चिनगारियाँ इधर-उधर फैला कर धम-धम करके अन्नपूर्णा नीचे उतर गईं। यह अपने हाथ से फैलाई हुई ज्वाला उनको भी कुछ-कुछ लगी थी। सरला के ऊपर क्रोध कुछ कम होने पर वह आप ही राजेन्द्र को चिट्ठी लिखनें बैठीं। अन्नपूर्णा अत्यन्त स्नेहपरायण माँ थीं। सन्तान के ऊपर उनका अत्यन्त अन्धस्नेह था। अपने किसी एक सन्तान के मलीन मुख पर ज़रा-सी हँसी देखने के लिए जिस तरह वह सहज ही दूसरे की सन्तान की छाती पर पाँव रखकर खड़ी हो सकती थीं, उसी तरह अपनी निजी हानि भी अनेक प्रकार सहन कर सकती थीं। इस विषय मे उनको न्याय-अन्याय वा कर्तव्य-अकर्तव्य का बिलकुल ज्ञान न रहता था। अतिस्नेहपरायण होने पर भी इसी अन्धता के कारण लड़के बड़े होकर निर्विकार भाव से

मातृवत्सल नहीं हो सके। वह लोग माँ की बात को सोच-विचारकर ग्रहण करते थे। घर पर यदि किसी दिन मास्टर लड़कों को डाँटते-फटकारते, या कभी मारते भी, तो अन्नपूर्णा उस दिन उपवास करके रह जाती थीं। जगदीश बाबू का मिज़ाज इसके बिलकुल विपरीत था। इस कारण ही इन सब बातों का कुफल नहीं फल सका। लड़के ही बहुत बार माँ को समझा-बुझाकर चुप कराते थे। वह लोग बहुत-से प्रमाण देते थे कि मास्टर के मारने से भी उनको चोट नहीं लगी है। तब अन्नपूर्णा चुप होती थीं। बुद्धि की अपेक्षा उनमें स्नेह अधिक था। इसलिए बहू के ऊपर वह क्रोध करके भी स्थिर न रह सकीं। अपने आप ही उन्होंने राजेन्द्र को चिट्ठी द्वारा घर आने को लिखा।

परन्तु ज़रा देर पहले जो वह सरला के ऊपर बकझक कर चुकी थीं, उससे उनका मन अभी तक शान्त नहीं हुआ था। इसी से उनका मन स्नेहयुक्त होने पर भी चिट्ठी नम्र न होकर कठोर ही हो गई। कोमल अनुरोध ही कठिन आज्ञा की भाँति हो गया। परन्तु झुँझलाहट मे अन्नपूर्णा उसे समझ न सकीं। चिट्ठी डाक मे भेजकर वह निश्चिन्त हो गईं। उनकी चिट्ठी पाकर भला राजेन्द्र घर आये बिना कैसे रह सकता है।

नवाँ परिच्छेद

मास बीत गये। भूपेन्द्र के विवाह का दिन स्थिर हो गया। इस बार राजेन्द्र भी टालमटोल नहीं कर सका। उसे भी आना ही पड़ा। विशेषकर उसकी परीक्षा भी समाप्त हो गई थी। अब वह किस बहाने से माँ को धोखा दे सकता था।

फिर भी, घर आकर वह कह सकता था कि किसी नौकरी की चेष्टा में बम्बई या कलकत्ते जाना है; परन्तु पिता से इस विषय में कुछ भी कहने का उसे अभी तक साहस न होता था। दूसरे आजकल जगदीश बाबू की तबियत भी अच्छी नहीं थी। डाक्टरों ने उन्हें किसी प्रकार उत्तेजित करने को निषेध कर दिया था।

घर आने पर राजेन्द्र को आशा से अधिक शान्ति मिली। परन्तु सरला के लिए सब एक समान है। अन्धे के लिए क्या दिन क्या रात!

इन कई दिनों में दूर से स्वामी को उसने जितना देखा है, इससे उसकी पहली धारणा बदल गई है। वह पहले

सोचा करती थी, शायद स्वामी का स्वभाव ही कम बोलने-वाला एवं गम्भीर है। अब उसने देखा, यह उसकी भूल थी। वह मुख सदा ही हँसी से भरा रहता है। बातचीत भी कम नहीं करते। घर के सब आदमियों की स्नेहधारा केवल सरला के लिए ही सूख जाती है।

शान्त शिष्ट सरला यह सब आघात और व्यथा हृदय में छिपाकर म्लानमुख पर बलपूर्वक हँसी लाकर छद्म-वेश मे ही फिरती है। वह किसी से भी कहना नहीं चाहती कि कैसी गम्भीर व्यथा से उसका हृदय भरा है।

इस घर का सब आचार-नियम क्रमशः वह जान गई थी। अब सदा ही सावधान रहती है। काम-धन्धे के बहाने को लेकर आजकल अन्नपूर्णा भी उसकी त्रुटि नहीं निकाल सकती थीं। फिर भी सामान्य बात को बहुत-सा बढ़ाकर वह जो कारण-अकारण झुँझला उठा करती थीं, वह भी आजकल राजेन्द्र के सामने बहुत कुछ नम्र हो गई हैं। यह भी सरला के पक्ष में अच्छा ही हुआ। इसके लिए मन ही मन उसने पति को धन्यवाद दिया।

इतने दिनों बाद उसने अपनी माँ और नानाजी को चिट्ठी लिखी कि मै अच्छी तरह हूँ। वह कैसी अच्छी तरह है, यह तो उसके अन्तर्यामी ही जानते हैं। परन्तु जो नहीं जानते, उनको व्यर्थ जलाने से क्या लाभ है।

तीन-चार दिन बाद ही उसकी चिट्ठी का उत्तर आ गया। उसमें लिखा था—

"प्रिय पुत्री,

तुम्हारी चिट्ठी मिली। यदि तुम अच्छी तरह हो तो इतने दिन तुमने चिट्ठी न भेजकर हमें सोच-विचार में क्यों डाल रक्खा था। तुमने चिट्ठी नहीं भेजी, इसी से मै भी साहस करके चिट्ठी न लिख सकी। पिताजी शीघ्र ही हरिद्वार जाना चाहते है। मै भी साथ ही जाऊँगी। बहुत दिनों से तुम्हे देखा नहीं है। हरिद्वार जाने के समय रास्ते में तुम्हे देखते जाने का विचार है। राजेन्द्र बाबू वहाँ हैं या नहीं, यह लिखना। इस घर में जमाई बाबू को बुलाने की आज तक दुराशा नहीं कर सके। यदि वहाँ जाकर भी उन्हें न देख पायेंगे तो बहुत दुःख होगा। यदि दो-चार दिन बाद यात्रा करने से भी उनसे भेंट हो सके तो ऐसा ही किया जाय। सब हाल लिखना। माननीय समधी और समधिन से प्रणाम कहना। जमाई बाबू को आशीर्वाद। तुम्हारा उत्तर आने पर यात्रा का दिन स्थिर करेंगे। इति।

तुम्हारी स्नेहमयी—माता"

माँ की चिट्ठी पढ़कर सरला सोच में पड़ गई। वह इस बात का क्या उत्तर दे कि वह कितने दिन रहेंगे या कब जायँगे। वह इस बात को जान ही कैसे सकती है? इसके

सिवा यहाँ आने पर तो सब भेद उन्हें मालूम हो ही जायगा।

और, यहाँ के यह सब लोग ही अपने मन में क्या विचारेंगे? जब वह यहाँ आकर देखेंगे कि इस राजपुरी में जो कुछ जहाँ होना चाहिए सब कुछ मौजूद है, परन्तु केवल एक जीवन के सहारे के अभाव से उनकी कन्या के भाग्य में कुछ भी नहीं है, तब क्या वह यह सहन कर सकेंगे? इसकी अपेक्षा तो यही उत्तम होगा कि इस पत्र का उत्तर ही न दिया जाय।

जब सरला को चिट्ठी मिली थी तब वह श्वशुर के लिए दूध गरम कर रही थी। उठने से दूध नष्ट हो जाने का भय था, इससे वह चिट्ठी हाथ में लेकर ही बैठी रही और दूध बनाने लगी।

इसी समय अन्नपूर्णा वहाँ आईं। सरला के हाथ में चिट्ठी देखकर उन्होंने पूछा, "यह किसकी चिट्ठी है, बहू?"

सरला—मेरी माताजी का पत्र है।

अन्न०—ऐं कहाँ, देखूँ। देखूँ तुम्हारी माँ ने क्या लिखा है? इतने दिन बाद माँ का स्नेह-समुद्र हठात् उबल पड़ा है।

सरला ने चिट्ठी सास के हाथ में दे दी। चिट्ठी पढ़कर अन्नपूर्णा का मुख अवज्ञा की हँसी से भर गया। उन्होंने व्यंग्य के स्वर से कहा, "फिर क्या कहना है? हरिद्वार

जाने के रास्ते में हम लोगों को भी कृतार्थ करते जायँगे !"

सरला के मुख पर अपमान की वेदना से लाली दौड़ गई। वह फिर भी अपने को सम्भाल कर शान्तस्वर से बोली, "नहीं मै उन्हें लिख दूँगी। वह यहाँ न आवेंगे।"

अन्नपूर्णा ने गरजकर कहा, "हाँ, क्यों नहीं लिखोगी ? माँ और नाना की तुम सलाहकार प्यारी पुत्री हो न ? हमारे घर की बदनामी न करने से भला तुम्हारे पेट मे अन्न-कैसे पचेगा ?"

सरला चुप रही। इधर राजेन्द्र को छोड़कर अन्नपूर्णा घर के सब आदमियों से कहती फिरती थीं कि सरला की माँ और नाना इसी घर में आ रहे हैं। कितने समय के लिए आ रहे है, यह बात किसी को नहीं बताई। हतबुद्धि सरला ने इस बात का प्रतिवाद करके सास का क्रोध और अधिक नहीं बढ़ाया।

भूपेन्द्र के विवाह में बरातियों के साथ राजेन्द्र भी चला गया। जगदीश बाबू शरीर अच्छा न होने के कारण स्वयं बारात में नहीं गये। राजेन्द्र ही वर-पक्ष का कर्ता-धर्ता बनकर गया था। इन दिनों उसमें उत्साह का अभाव न था।

उसी दिन बाहर से एक नौकर ने आकर ख़बर दी कि बहूजी के नानाजी आये हैं।

अन्नपूर्णा हँसकर व्यंग्य के स्वर से बोलीं, "आये है ?

हमने तो सुना था कि वह बड़े सन्मानी आदमी हैं, आयेंगे नहीं। अब कौन गया था, उनकी खुशामद करने ?"

सरला का हृदय नीरव रोदन से फूल रहा था। हाय! क्या उसके चुप रह जाने का इशारा माँ या नाना नहीं समझ सके, या उसे देखने के लोभ से वह उसे समझकर भी नहीं समझे ? अब वह यहाँ के यह पैनी धारवाले वाक्य-बाण कैसे सुन सकेंगे। वह तो सत्य ही आत्माभिमानी आदमी हैं।

फिर अन्नपूर्णा ने नौकर से कहा, "हाँ रे, उन्होंने कुछ खाने-पीने के बारे में कहा-सुना है या नहीं ?"

नौकर ने उत्तर दिया, "नहीं, आज एकादशी है। जो आये हैं, उन्होंने कहा है कि एकादशी को हम व्रत करते हैं।"

सरला ने आराम की एक साँस ली। खैर, तब भी कुछ अच्छा है। नानाजी के भोजन इत्यादि का इन लोगो को कुछ प्रबन्ध न करना होगा।

बाहर जगदीश बाबू के साथ कुछ देर बातचीत करके पंडितजी कुंठित स्वर से बोले, "मेरे पास समय बहुत कम है। अब जरा सरला के साथ भेंट करके जाना चाहता हूँ।"

जगदीश—आप अपने समय को इतना कम क्यों बताते हैं ?

पंडित—हम लोग हरिद्वार जा रहे हैं। ट्रेन छूटने का समय कम रह गया है।

जगदीश—हमारी समधिन क्या घर ही पर रह गई हैं?

पंडित—नहीं। वह वहाँ अकेली किसके पास रहेंगी? वह भी मेरे साथ ही है। स्टेशन के वेटिंग रूम में बिठाकर आया हूँ। उसी से तो तनिक और भी जल्दी लौटना चाहता हूँ। बड़ा ही हताश होना पड़ा। राजेन्द्र बाबू के साथ भेंट न हुई। विवाह के समय ही ज़रा-सा देखा था। उससे क्या होता है?

समधिन को स्टेशन पर छोड़ आने के लिए जगदीश बाबू ने दो-चार बातें कहीं। उत्तर में पडितजी ने कहा, "क्या कहूँ वह किसी प्रकार भी आने को राज़ी नहीं हुईं। और आज एकादशी भी थी, इसी से मैं अधिक ज़ोर न दे सका।"

नीचे के लम्बे-चौड़े दालान में जगदीश बाबू ने पंडितजी को लाकर बिठा दिया। दासी जाकर सरला को बुला लाई। सरला की गोद में विपिन था। विपिन को गोद से उतारकर उसने नाना एवं श्वशुर को प्रणाम किया। पंडितजी ने उसकी ओर प्रेम से देखकर कहा, कैसी है बेटी? अच्छी तरह है न?"

सरला सिर झुकाकर कुछ हँसी। उसकी आँखों में उस समय जल भरा आता था। सिर नीचा करके उसने उन अश्रुओं को छिपाया।

सरला के नाना ने गद्गद कठ साफ करके सरला को एक

बार अपने साथ ले जाने का जगदीश बाबू से प्रस्ताव किया।

जगदीश बाबू ने उत्तर में कहा, "मुझे तो कुछ आपत्ति नहीं है; परन्तु छोटे बच्चे को जो यह पाल रही है, उसी के कारण बाधा हो रही है। और आजकल ब्याह का गोलमाल भी तो है। और कुछ थोड़े दिन बाद ले जाइएगा।"

इसके बाद बहुत संक्षेप में और दो-चार बाते कहकर पंडितजी चले गये। राजेन्द्र के साथ भेंट न होने से वह यथार्थ में ही बहुत दुःखित और खिन्न हो गये थे। सरला को भी उन्होंने जितनी देर देखा, उससे वह यह अनुमान न कर सके कि इस सुख-ऐश्वर्य में आकर भी वह यथार्थ सुखी है या नहीं। मन में एक प्रकार का संशय लेकर ही वह लौटे थे। परन्तु उनका यह संशय उस समय स्थिर नहीं रहता था जब चमकते हुए चन्द्रमा के सदृश राजेन्द्र की याद पड़ती थी। उसी राजेन्द्र के हाथ में उन्होंने सरला को सौपा है। तब सरला क्यो सुखी नहीं होगी?

दूसरे दिन नवबधू को लेकर भूपेन्द्र घर लौटा। सारे दिन के उत्सव आयोजन के बीच में भी अन्नपूर्णा ने सरला को नहीं बुलाया। उसका एक गोपनीय कारण था कि सरला पतिप्रिया नहीं थी। जो स्त्री पतिप्रिया नहीं है, उसका उत्सव में आना उन्होंने उचित नहीं समझा। सरला विपिन का

लेकर अपने कमरे मे ही बैठी रही। सास की इस इतनी बड़ी अवज्ञा के भीतर साज सज्जा करके बाहर निकलने को उसकी इच्छा न हुई। सास की अनुमति के बिना कपड़ा बदलने की भा उसकी रुचि न हुई।

वर-वधू की गाड़ी बाजे गाजे के साथ घर के फाटक पर आ पहुँची। तब अन्नपूर्णा ने सरला को भी पुकारा, परन्तु इस पुकार के लिए सरला तय्यार न थी। वह समझ रही थी कि इतने आदमियो की भीड़भाड़ के अन्दर भला उसे बुलाने की किसे याद आ सकती है। वह जैसे जिस वेश में बैठी थी, उसी प्रकार वहाँ जा खड़ी हुई।

भूपेन्द्र के पीछे राजेन्द्र भी गाड़ी से नीचे उतरा। आत्मीय और कुटुम्बियों के नाना प्रकार के वस्त्र-अलंकारों के बीच में सीधी-साधी एकमात्र रमणी की आडम्बरहीन मूर्ति पर, सोने, हीरे और माणिक से हीन होने पर भी, सबकी विस्मयपूर्ण दृष्टि पड़ रही थी। राजेन्द्र की भी पड़े बिना न बची।

सरला ने एक बार सामने की ओर देखा। एक मोटे से पत्थर के खम्भे पर कमर टेककर खड़ा हुआ राजेन्द्र भी उसी की तरफ देख रहा था। स्वामी के नेत्रों से नेत्र मिलते ही सरला लज्जित होकर वहाँ से हट गई।

हाय रे दुर्भाग्य! उसने तो इच्छापूर्वक उधर नहीं देखा

था। क्षणमात्र के लिए देखा देखी को कहीं दूसरे लोग उसकी दृष्टि को लुब्ध न कहे, वह इसी लज्जा से गडी जाती थी। सौभाग्यवती होने की वजह से अन्नपूर्णा ने ही वधू का वरन किया। उपस्थित मंडली ने 'सास के समान ही भाग्यवती हो' कहकर वधू को आशीर्वाद दिया।

दूसरी ओर कई युवतियाँ मिलकर सरला के विषय मे मनोयोग सहित बातचीत कर रही थीं। उन लोगों के लिए सरला एक रहस्यमयी पहेली बन गई थी।

दूसरे कमरे मे से विपिन का चीत्कार सुनकर सरला जल्दी से चली गई। उसने वहाँ जाकर देखा कि विपिन एक ऊँची कुरसी पर से गिर गया है। उसके सामने के नये दाँतो से लगकर ओठ कट गया है और रक्त निकल रहा है। जिस नौकर के पास वह खेल रहा था, वह उसे अकेला छोड़कर बहू देखने चला गया था। वह विपिन को क्यो नहीं लेता गया इसलिए सरला विरक्त हुई। विपिन को लेकर वह फिर बाहर नहीं गई। अभी जो स्त्रियों का दल उसकी अनादरयुक्त देह पर व्यंग्य-विद्रूप कर रहा था, वह उसे अच्छा न लगा। इसी से वह अलग हो गई। यह उसका सौभाग्य ही समझो कि अन्नपूर्णा ने उसे फिर नहीं पुकारा।

दसवाँ परिच्छेद

विवाह मे और बहुत-से उत्सवो के अतिरिक्त एक रहस्य (रास)-मंडली भी आई थी। यह मडली ज़मींदार साहब के यहाँ प्रत्येक उत्सव पर आया करती थी। राजेन्द्र के विवाह में आई थी। इस बार भी आई है।

बाहर मैदान मे बाँस गाड़कर शामियाना लगाया गया था। जो लोग इस काम मे लगे हुए थे, उनकी काम से अधिक चिल्लाहट ही सुनाई पड़ती थी। और जो लोग कुछ भी नहीं कर रहे थे वह अपनी कार्यपटुता दिखाने के लिए और भी अधिक हल्ला मचा रहे थे।

आज पूजा का दिन है, रात्रि को लीला होगी। घर, बाहर, चारो ओर, निमन्त्रित आगत सज्जन ही दिखाई-देते थे। अन्नपूर्णा के कहने के अनुसार विपिन को भली प्रकार साज-पोशाक पहनाने के लिए सरला चेष्टा कर रही थी। उधर विपिन किसी प्रकार कपड़ा नहीं पहनना चाहता था। चारों ओर हाथ-पाँव फेक रहा था। सरला किसी प्रकार उसका

रोना न रोक सकी। हारकर उसके कपट-रोदन की गति देखकर अन्त में वह भी हँस पड़ी।

उसी समय अन्नपूर्णा ने उस कमरे मे प्रवेश किया। सरला को हँसते देखकर उन्होने चिढ़े हुए स्वर से कहा, "किस सुख से इस जले मुख मे हँसी आती है, यह समझ नहीं सकती। लड़के को यदि चुप नहीं करा सकतीं तो उसे मारने-पीटने की क्या ज़रूरत है?" फिर सरला की ओर देखकर बोलीं, "कैसी लज्जा की बात है? अपनी सूरत कैसी सुन्दर बना रक्खी है? दासियों से भी अधम। कुत्ते को यदि बढ़िया-बढिया भोजन खिला दिये जायँ तो भी वह लोगों की आँख बचाकर जूठन की ओर ही ताकता है।"

वसन्त-ऋतु के फूले हुए बाग मे जैसे तुषारपात हो, उसी प्रकार सरला के मुख पर की प्रफुल्लता विलीन हो गई। वह टूटे-फूटें स्वर में बोली, "माताजी, मैने उसे मारा नहीं है।"

अन्नपूर्णा चिल्लाकर बोलीं, "नहीं नहीं! मारा नहीं। मारा नहीं तो क्या वह वैसे ही चिल्ला रहा था? ऐसा रोनेवाला तो वह बालक नहीं है।"

सरला ने बलपूर्वक नेत्रो के जल को रोका; परन्तु उसके हृदय की असहनीय वेदना से उसका सारा शरीर जल रहा था। यह उसके किस अपराध की लांछना है, वह समझ न

सकी। सास उसे चाहे जब उल्टी-सीधी सुनाने लगती हैं। यह उसका दुर्भाग्य नहीं तो क्या है?

विपिन को बहला-फुसलाकर सरला ने बाहर भेज दिया और वह अपने गरम मस्तक को शीतल करने के लिये मुँह धोने चली गई। मुँह धोकर जब वह वापस आई तो उसने देखा कि सुखिया दासी बहुत-से पान लिये धो रही है।

सरला ने दासी से कहा, "यह पान मुझे देकर तुम और कुछ काम करने जाओ। मै इन्हे धोकर माताजी के लिए लगाकर रख दूँगी।"

सुखिया ने बात सुनी-अनसुनी करके कहा, "आज मै ही माताजी के लिए पान लगाये देती हूँ।"

सरला ने धीर स्वर से कहा, "क्या माताजी ने तुम्हे यह आज्ञा दी है?"

सुखिया ने झुँझलाकर कहा माताजी ने तो नहीं कहा परन्तु उन्हे तो अपने पानों से मतलब। चाहे कोई लगावे।

सरला भली भाँति जानती थी कि यह बेअदब दासी उसकी सास की बहुत मुँह लगी हुई है, परन्तु फिर भी वह इस धृष्ट दासी की यह बात सहन न कर सकी। उसने कठोर स्वर से कहा, "नहीं, यह नहीं हो सकता। पान मै ही लगाऊँगी। यह सब पान जाकर मेरे कमरे में रख आओ।"

दासी क्रोधित होकर बोली, "इन्हीं सब लक्षणों से तो

माताजी नाराज होती है। बात कहने से सुनेंगी नहीं।
और ... ... "

सरला ने सिर ऊँचा करके कहा, "सुखिया, तुम्हे बात करना नहीं आता। मै तुम्हारी बात मानने को बाध्य नहीं हूँ। जाओ पान रख आओ।"

यह कहकर सरला अपने कमरे मे चली गई। पान खाने का एक नशा-सा अन्नपूर्णा को हो गया था। वह चौबीसों घंटे पानो का सोने का डिब्बा अपने साथ रखती थीं। इससे पहले वह अपने खाने के पान स्वयं लगाती थीं। दासियों द्वारा लगाये गये पान उन्हे पसन्द न आते थे। अब जब से सरला आई है, उनके पान वही लगाती है। यदि किसी दिन किसी कारण से वह न लगा सकती थी तो अन्नपूर्णा बहुत नाराज होती थीं। इसी से सरला इतनी ज़िद कर रही है।

परन्तु दासी तक के इस रूखे बर्ताव के कारण सरला पागल होना चाहती है। सुखिया बड़बड़ाती हुई पान रखकर चली गई।

पान लगाकर सरला ऊपर छत पर चली गई। उस समय आकाश निर्मेघ और निर्मल था। नीले आकाश-समुद्र में सफ़ेद मक्खन-जैसा एक बादल का टुकड़ा तैरता फिरता था। धूप की झलक ने श्यामला पृथिवी को सुनहरे तारों से बना हुआ डुपट्टा-सा उढ़ा रक्खा था।

बाग़ के एक कोने मे एक हौज़ बना हुआ था। उसमें असंख्य कमल फूले हुए गुलाब के पुष्पों से होड़ लगा रहे थे; यह एक प्रकार ठीक भी है। चाहे कितनी ही कम देर के लिए सही, रूप-रंग के आगे सुगन्धि को ही हारना पड़ता है। यह सब देखकर सरला कुछ सोचती हुई नीचे उतर आई और कपड़े बदलने लगी। यदि न बदलेगी तो सास फिर नाराज़ होगी। एक चौड़े लाल किनारे की सफ़ेद सूती साड़ी पहनकर उसने सास की मानरक्षा की। सिर के बालों की जटाएँ बँधी हुई थीं। इसलिए उन्हे खोलने की उसने व्यर्थ चेष्टा नहीं की और वह थोड़े समय का काम भी नहीं था। बहुत दिन की लापरवाही के कारण सिर की ऐसी दशा हो गई थी कि वह अपने हाथ से बालो को सुलझा भी नहीं सकती थी।

सन्ध्या के बीतने पर अन्नपूर्णा ने उसे पुकारकर कहा, "नीचे गाना हो रहा है। चलो वहाँ जाकर बैठो, मै भी आ रही हूँ।"

सरला ने सिटपिटाकर कहा, "अभी से? अभी तो विपिन को दूध भी नहीं पिलाया।"

अन्नपूर्णा ने उत्तर दिया, "आज विपिन को दासी ही दूध पिला देगी। तुम चलो।"

इस पर सरला और कुछ न कहकर सीढ़ियों से नीचे उतरने लगी।

अन्नपूर्णा ने सरला की ओर एक बार सिर से पैर तक देखा और बोलीं, "एक ही बात तुम्हें कितनी बार समझानी

होगी? वहाँ और भी दस जनी बैठी है। उनके सामने तुम्हे इस वेश में जाने से लज्जा न आवेगी? कहो।"

सरला कुछ न बोली। अपने हाथ से सिर गूँधने का उसे कभी भी अभ्यास नहीं था। लोगो के सामने साज-सज्जा करके निकलने मे उसे बड़ी लज्जा आती थी। इसी कारण उसे सास की इस बात से कुछ विशेष लज्जा न लगी। वह उसी वेश से जाकर चिक की आड़ मे बैठ गई और बाहर की सजावट देखने लगी। ज़मींदार के घर मे किसी ओर भी किसी अनुष्ठान की कमी न थी।

बड़े भारी फ़र्श पर, बीच मे स्थान छोड़कर, चारों ओर ठसाठस आदमी बैठे थे। शामियाने के खम्भो पर लाल और हरा कपड़ा लिपट रहा था। देवदारु के वृक्षों के भीतर गैस के हंडे टँगे हुए थे। राजेन्द्र स्वय खड़ा होकर सुमिष्ट और मधुर हँसी द्वारा आगत सज्जनों की अभ्यर्थना करके उन्हे बिठा रहा था।

गाना आरम्भ होने से पहले स्त्रियाँ अपनी बातचीत समाप्त कर लेना चाहती थीं। एक युवती आकर वहाँ पर बैठी हुई स्त्रियों से बोली, "तुम मेरे लिए यहाँ पर कुछ जगह दोगी क्या? भाई, वहाँ से कुछ दिखाई नहीं देता।"

एक बहू कुछ हटकर बैठ गई और बोली, "यदि इतनी जगह में बैठ सको तो बैठ जाओ।"

"हाँ, किसी प्रकार बैठ जाऊँगी। धन्यवाद!" कहकर वह

युवती वहाँ बैठ गई। फिर बोली, "तुम लोग तो इस घर के पास ही रहती हो। इस घर का बहू से तुम्हारा परिचय है या नहीं। भला वह कैसी है?"

"विचित्र।"

"सच?"

"तुम भी पागल हुई हो क्या! भला जिस बहू के गुणों के कारण ही घर के लड़के ने घर छोड़ दिया है, हम लोग क्या उसके पास बैठ भी सकती है।"

चार-पाँच जनी एकदम सरला की ओर उँगली से इशारा करके दबे स्वर से बोल उठीं, "चुप, चुप, चुप।"

सरला ने मुख फेर कर देखा। उसके पीछे जो स्त्रियाँ बैठी हैं, उनमें से वह एक को भी नहीं पहचानती; परन्तु यह बातचीत उसी के विषय में हो रही है, यह वह समझ गई। उसने ऐसा क्या अपराध किया है जो उसके लिए घर के लड़के ने घर छोड़ दिया है? नारी-जीवन के लिए सत्य ही यह एक बड़े कलंक की बात है। यह झूठी बात वह कैसे सहन करे! उसके भाग्य में चाहे जो हो, वह सुखी रहें यह प्रार्थना ईश्वर के निकट वह अनेक बार कर चुकी है। उसके विषय में जो आलोचना हो रही थी, वह मन्द अवश्य पड़ गई; परन्तु बन्द नहीं हुई। गाना समाप्त हो जाने पर अन्नपूर्णा उठीं। सरला भी खड़ी हो गई। रात्रि प्रायः समाप्त हो चुकी थी।

ग्यारहवाँ परिच्छेद

री रात घोर वर्षा हो चुकी है। इस समय दस बजे होंगे। वर्षा बन्द हुए अभी थोड़ी ही देर हुई है। पृथ्वी के जले हुए हृदय को शीतल करके सरल स्निग्ध वायु बह रही है। राजेन्द्र हाथ में एक पुस्तक लिए पढ़ने की चेष्टा कर रहा था। रात की वर्षा में कोई पुस्तक भीगी तो नहीं, यही देखने के लिए उसने अपनी लायब्रेरी का कमरा खोला था; परन्तु पुस्तकें देखते-देखते एक पुस्तक में वह अटक गया था। इतने में भूपेन्द्र ने वहाँ आकर कहा, "भाई साहब ज़रा इस कोनेवाली अल्मारी की कुंजी मुझे दो।"

"क्या करोगे?"

"कुछ पुस्तके निकालूँगा।"

"इस समय पुस्तकें लेकर क्या करोगे?"

भूपेन्द्र—(**विरक्त होकर**) "ओह, पुस्तकें लेकर क्या करना होता है? तुम कुंजी दो न।"

राजेन्द्र ने ड्राअर से निकालकर भूपेन्द्र के हाथ मे कुंजी दे दी। भूपेन्द्र अल्मारी खोलकर पुस्तके छाँटने लगा।

कमरे के बाहरवाले बरामदे में नीचे की ओर वर्षा के पानी मे छप छप शब्द सुनकर भूपेन्द्र ने ऊपर मुख उठाकर देखा कि विपिन नंगा होकर पानी में खेल रहा है। भूपेन्द्र जल्दी से उठकर उसके पास पहुँचा। उसे देखकर विपिन खिल-खिलाकर हँस पड़ा।

भूपेन्द्र बोला, "हूँ, यह देखो बाबू साहब गंगा नहा रहे हैं! उठ उठ, बन्दर कहीं का। नहीं तो अभी बुखार आ जायगा।"

विपिन सिर हिलाकर हँसते-हँसते बोला, "नहीं उठता। तुम जाओ।"

भूपेन्द्र ने कहा, "नहीं उठोगे तो मार खानी पड़ेगी।"

विपिन मुँह बनाकर बोला, "मारोगे कैसे? मै माँ से कह दूँगा।" विपिन की समझ में इससे बड़ी धमकी और कोई न हो सकती थी; परन्तु उसकी यह धमकी यहाँ काम न आई। भूपेन्द्र उसे जबरदस्ती गोद में उठाकर माँ के पास ले गया और बोला, "देखो अम्मा, अपने दुलारे लड़के की करतूत। वर्षा के पानी में गंगा नहा रहा था।"

अन्नपूर्णा ने प्यार से बालक को गोद में उठा लिया।

× × ×

भूपेन्द्र की बहू उर्मिला एक सप्ताह सुसराल रहकर अपने पिता के घर चली गई। अन्नपूर्णा ने कहा था कि यह तो सरला की भाँति स्यानी और ग़रीब नहीं है जो बाप के घर न जायगी। विशेषतः इन कई दिनों में रो-धोकर उर्मिला ने सब घरवालों को तंग कर डाला था। फिर भी वह जितनी देर सरला के पास रहती थी, शान्त रहती थी। परन्तु जब उसने सुना कि विवाह के उपरान्त इन लोगों ने सरला को उसके मायके नहीं भेजा तो वह बहुत घबराने लगी। यदि वह लोग उसे भी न भेजें तो?

उर्मिला को लेने के लिए जो लोग आये थे, अन्नपूर्णा ने उन्हे दो-चार दिन रोकना चाहा; परन्तु राजेन्द्र ने बाधा देकर कहा, "यह और क्या नई बात निकाली? बहू अभी निरी बालिका है, उसे अधिक तंग करने से क्या लाभ? लेने आये हैं भेज दो।" अन्नपूर्णा ने फिर कुछ न कहा। बहू भेज दी गई।

सरला यह बात सुनकर मन ही मन हँसी। उसी के बार विधाता का विधान दूसरी भाँति का था। वह तो खाली इन लोगो की दया देकर खरीदी हुई दासी मात्र है। उसका कोई पावना इन पर नहीं है। वह तो विवाह के समय ही मिट गया था।

एक दिन सरला ने भूपेन्द्र से कहा, "छोटे बाबू, तुमने मुझे कुछ पुस्तकें देने को कहा था। परन्तु अभी तक नहीं दीं।"

भूपेन्द्र ने लज्जित होकर उत्तर दिया, "मै उस दिन

पुस्तकें ही निकाल रहा था। विपिन ने सब गड़बड़ कर दिया। अच्छा अभी लाये देता हूँ।"—यह कहकर लज्जित भूपेन्द्र एक एक छलाँग में दो-दो सीढ़ी लाँघता हुआ नीचे उतर गया। उसका आग्रह देखकर सरला हँस पड़ी।

पुस्तके निकालकर भूपेन्द्र कुंजी राजेन्द्र को देने लगा। उसने हँसकर कहा, "इतनी पुस्तकें कहाँ ले जा रहे हो ? घर में शायद।"

भूपेन्द्र उत्तर मे 'हाँ' कहकर शीघ्रता से घर मे चला गया। राजेन्द्र लापरवाही से हँस दिया। मन में सोचा कि यह भी भूपेन्द्र का पागलपन है।

पुस्तकें देखकर सरला ने कहा, "अरे यह तो बहुत-सी है। इतनी पुस्तकें एक साथ लेकर मुझे चिन्ता मे पड़ जाना पड़ेगा। हमारा विपिन भी तो बड़ा भला आदमी है।"

भूपेन्द्र—कुछ भी हो, मै तो ऋण-मुक्त हो गया।

सरला—हाँ, सो तो हो गये; परन्तु इन पुस्तको के मालिक तुम्हीं हो न ? यदि यह बात है तो मुझे अधिक सोच न करना पड़ेगा।

भूपेन्द्र—मालिक चाहे जो हो। आपको तो पढ़ने से मतलब।

सरला—यह नहीं कहती। तब भी निर्भय हो सकती हूँ। यदि कोई पुस्तक दैवात् बिगड़ जाय तो ?

भूपेन्द्र—इससे निर्भय रहो। कोई पुस्तक फट जाने पर भी दंड न मिलेगा।

सरला—तब ठीक है।

"उसका कोई डर नहीं।" कहकर भूपेन्द्र चला गया।

"अवसर पाकर पढ़ूँगी"—कहकर सरला ने वह पुस्तकें उठाकर रख देने को हाथ में लीं। उसने देखा कि प्रत्येक पुस्तक पर राजेन्द्र का नाम लिखा है।

कई दिन बाद एक दिन शाम के समय जगदीश बाबू, चित्त अच्छा न होने के कारण, घर ही में लेटे थे। उनका चेहरा देखकर उनके शरीर का रोग समझना कठिन था। हृदय-रोग से उन्हें बीच-बीच मे शय्याशायी होना पड़ता था। उस दिन भी हृदय की पीड़ा से उन्हे बहुत कष्ट हो रहा था। पास बैठी हुई अन्नपूर्णा उनके माथे पर हाथ फेर रही थीं।

एक टेलीग्राम हाथ मे लेकर राजेन्द्र घर में आया; परन्तु कुछ ठहरकर सोचने लगा कि पिताजी और माँ को खबर दूँ या नहीं। टेलीग्राम बनारस से आया था। वहाँ पर अन्नपूर्णा की माता बहुत बीमार थीं। उन्होंने अन्तिम भेंट करने के लिए अन्नपूर्णा को बुलाया था। वह बहुत बूढ़ी थीं आरोग्य होने की कुछ आशा न थी। यही बात राजेन्द्र के मामा ने संक्षेप मे लिखी थी।

उसी दालान मे सरला बैठी हुई बिस्कुट के खाली टीन में सूखी हुई बड़ी रख रही थी। वहाँ खड़ा होकर राजेन्द्र सरला की अपेक्षा स्वयं ही अधिक संकुचित हो गया था। इस रमणी का विवाह किशोर अवस्था में हुआ था। इस समय इसकी यौवनोज्ज्वल दीप्ति नेत्रों में चुभती थी। वह चाहे अच्छी

लगे या बुरी, इसका अपने ऊपर भी कुछ अधिकार है, यह उसने किसी दिन भी स्वीकार नहीं किया था। उसके दु:ख-सुख के साथ राजेन्द्र का भी कुछ सम्बन्ध है, यह कभी उसने मन में भी न सोचा था। अपनी इच्छा के विरुद्ध इस विवाह को वह एक स्वप्न की भाँति भूल जाना चाहता था। उपेक्षा और अवज्ञा से उसने कभी मुख से कोई बात भी नहीं कही थी। राजेन्द्र ने सोचा, उसने जिससे कभी कुछ नहीं कहा वह उससे क्या माँग सकती है? उसका उस पर अधिकार ही क्या हो सकता है?

विपिन ने राजेन्द्र को देखकर कहा, "मामी वह देखो मामा खड़े हैं।"

राजेन्द्र ने विपिन की ओर संकेत करके पुकारा, "सुन विपिन। ओ विपिन।"

विपिन सरला की ओर जाते हुए बोला, "क्या?"

राजेन्द्र ने कहा, "यहाँ आ। कहता हूँ।"

विपिन ने एक बुद्धिमान् पुरुष की भाँति सिर हिलाकर कहा, जोर से मत बोलो मामा। नानाजी की तबियत अच्छी नहीं है।

राजेन्द्र बोला, "अच्छा नहीं चिल्लाऊँगा। तू बात तो सुन।"

सरला अपना काम समाप्त कर चुकी थी। वह उठ खड़ी हुई। उसी समय अन्नपूर्णा ने आकर कहा, "तू यहाँ खड़ा क्या कर रहा है, राजन?"

राजेन्द्र—कुछ भी नहीं। एक काम है। क्या बाबूजी सो रहे है?

अन्न०—नहीं। वह तो जाग ही रहे हैं।

राजेन्द्र—कैसे है?

अन्न०—कहते तो है कि आज कुछ अच्छे हैं। जा तू देख आ न?

राजेन्द्र ने पिता के कमरे मे जाकर उन्हे टेलिग्राम पढकर सुना दिया। उन्होंने कुछ देर सोचकर कहा, "तब तो उन्हे जाना ही होगा।"

राजेन्द्र—परन्तु आपकी तबियत तो अच्छी नहीं है। अम्मा कैसे जाना चाहेगी?

जग०—चाहेगी क्यो नहीं? मेरी तबियत कुछ विशेष खराब नहीं है। भूपेन्द्र उन्हे ले जायगा और दो-चार दिन बाद साथ ही लेकर लौट आयेगा। तुम उन्हे पुकारो। मै कह दूँगा।

राजेन्द्र—भूपेन की अपेक्षा तो मै ही साथ जाऊँ तो अच्छा हो। मेरा रास्ता, घर, अच्छी तरह देखाभाला...

जगदीश० (कठोर स्वर से)—नहीं। तुमको फिर वहाँ नहीं जाना होगा।

राजेन्द्र का मुख लाल हो गया। पिता की इस बात में क्या इशारा था, यह समझने मे उसे देर न लगी। वह चुपचाप वहाँ से चला गया।

यह स्थिर हुआ कि सरला घर पर रहकर गृहस्थी का

काम-काज देखेगी और अन्नपूर्णा भूपेन्द्र के साथ काशी जायँगी। माँ की बीमारी का हाल सुनते ही अन्नपूर्णा की आँखो से आँसू बहने लगे। गृहस्थी-सम्बन्धी सरला को दो-चार उपदेश देकर उन्होंने काशी के लिए प्रस्थान किया। जब वह मोटर में बैठी थीं, सरला ने जाकर उन्हे प्रणाम किया। उन्होने उसे सप्रेम गोद में बिठाकर माथे पर हाथ रक्खा और आशीर्वाद दिया। फिर मीठे स्वर से कहा, "सुनो बहू, तुम सब ओर की बाते ठीक नहीं समझतीं। अकेले रहने पर कुछ ऐसी चेष्टा करना जिसमें एकबारगी ही सारा जन्म व्यर्थ न हो जाय। ऐसे घर आकर भी जो तुम सुखी नहीं हो सकीं, इसका हमको क्या कुछ कम दुःख है? तुम यदि कुछ चतुराई से काम करो तो . . ।" अन्नपूर्णा और भी कुछ कहना चाहती थीं; परन्तु भूपेन्द्र के जल्दी मचाने से चुप हो गईं। सरला नेत्रो में आँसू भरे उनके पैर छूकर बाहर आ गई। गाड़ी चल दी।

सरला कुछ आश्चर्य मे पड़ गई। सास से इस प्रकार का कोमल और मीठा बर्ताव उसने आज तक न पाया था। हठात् सास के इस प्रेम और दया का क्या कारण है?

गाड़ी के चले जाने पर वह अनमने भाव से अन्दर जाने की चेष्टा कर रही थी कि जगदीश बाबू ने पुकारा, "बहू"।

श्वशुर की पुकार सुनते ही सरला ससकोच जाकर उनके

सामने खड़ी हो गई। जगदीश बाबू पर्दे के विषय में नये विचार के मनुष्य थे। वह परदा बिलकुल न पसन्द करते थे। उनकी इच्छा थी कि उनकी पुत्र-वधुएँ भी पुत्री की भाँति उनके सामने निकलें और निःसंकोच बातचीत किया करें, अस्तु। उन्होंने सरला से बैठने को कहा। सरला बैठना ही चाहती थी कि उसी समय राजेन्द्र ने आकर कहा, "बाबूजी, डाक्टर साहब आ रहे हैं।"

जगदीश बाबू उठकर बैठ गये। बोले, "आज तो मेरी तबियत अच्छी ही थी। डाक्टर साहब को व्यर्थ ही कष्ट दिया, अच्छा बुला लाओ।"

सरला कमरे से बाहर चली गई। अँधेरा हो गया था। सरला ने नौकर से जगदीश बाबू के कमरे मे लैम्प और अगरवत्ती ले जाने को कहा और फिर विपिन को पुकारा।

विपिन ने गाते-गाते आकर पूछा, "मामी, मेरी अम्मा कहाँ है?"

सरला ने उसे पुचकारकर कहा, "अम्माजी घूमने गई है।"

विपिन उछलकर खड़ा हो गया। बोला, "अम्मा घूमने गई है। मै भी जाऊँगा। कहाँ गई हैं बताओ?" यह कहकर वह रोने और मचलने लगा। बड़ी कठिनता से सरला ने उसे चुप किया और दूध पिलाकर सुला दिया। फिर वह श्वशुर

के लिए कुछ फल और दूध लेकर उनके कमरे मे गई। आजकल शाम को जगदीश बाबू और कुछ भोजन न करते थे।

पलॅग के पास एक छोटी टेबुल रखकर सरला ने उस पर तश्तरी और प्याला रख दिया।

जगदीश बाबू ने यह देखकर कहा, "क्या आठ बज गये ? अभी से खाना ले आई ?"

सामनेवाले ब्रेकेट पर रक्खी हुई घड़ी की ओर देखकर सरला ने उत्तर दिया, "जी हाँ। आठ बजने मे कुछ ही मिनट शेष है।"

जगदीश बाबू फल खाते-खाते बोले, "बहू, तुम्हारा विपिन सो गया है क्या ?"

"जी हाँ।"

"इन कई दिनों में तुम्हे बहुत कष्ट उठाना पड़ेगा। तुम विपिन को अधिकतर चमेली के पास ही रखना।"

सरला ने मन में सोचा—क्या मेरे कष्ट का भी किसी को कुछ ध्यान हो सकता है ? परन्तु मुख से तो यह कह नहीं सकती थी। केवल बोली, "जी नहीं। कष्ट क्या है ?"

जगदीश बाबू का भोजन समाप्त हो जाने पर वह प्याला और तश्तरी उठाकर चली गई। पीछे फिरकर उसने एक बार भी न देखा कि उस कमरे में राजेन्द्र भी मौजूद है।

बारहवाँ परिच्छेद

अन्नपूर्णा को बनारस गये लगभग एक मास बीत गया था। जगदीश बाबू का स्वास्थ्य अब बहुत कुछ सुधर गया था। परन्तु अन्नपूर्णा की माता अभी तक अच्छी न हुई थीं। इसी लिए अभी तक अन्नपूर्णा लौट न सकी थीं।

गृहस्थी का सारा भार अभी तक सरला के ही माथे पर था। वह भी अपना कर्तव्य भली भाँति समझती थी। प्रत्येक कार्य का निपुणतापूर्वक सम्पादन करती थी। घर के कोने-कोने पर उसकी दृष्टि रहती थी। कहीं पर भी वह कुछ त्रुटि न देख सकती थी। इसी कारण घर के दासी और नौकर तक प्रसन्न रहते थे। किसी को कुछ शिकायत न थी। इतना सब रहने पर भी राजेन्द्र के साथ उसका कुछ मेल न हो सका। आजकल तो उसे राजेन्द्र के सामने पड़ जाने पर भी बहुत संकोच होता था।

राजेन्द्र का विचार था कि मैंने सरला से विवाह करके केवल माता-पिता की आज्ञा पालन की है। उसके प्रति मेरा

कोई कर्तव्य नहीं है। सरला के ऊपर आरम्भ से ही जो उसे विरक्ति थी, उसे वह किसी प्रकार से भी दूर नहीं कर सका। उसके हृदय का वह फूलों का घाव अभी तक न सूखा था।

जगदीश बाबू सदैव की भाँति नियमित रूप से अपना काम करते रहते हैं। जिस प्रकार वह पहले निर्वाक् निर्लिप्त रहा करते थे, अब भी वैसे ही रहते है।

भोजन करते समय आजकल वह सरला से गृहस्थी-सम्बन्धी दो-एक बात कर लिया करते है। या तो यह उनका भावान्तर था या सरला के प्रति उनका गम्भीर स्नेह था, यह वही जानें। उस दिन दोपहर को वह विश्राम कर रहे थे। विपिन भी उन्हीं के पास सो रहा था। उन्होंने पुकारा, "बहू"।

सरला ने वहाँ आकर पूछा, "विपिन को उठा लूँ।" जगदीश बाबू बोले, "नहीं, उसे यहीं रहने दो। तुम बैठ जाओ। मुझे कुछ काम है। (पुकारकर) अरे ओ लछमन, ज़रा राजेन्द्र को तो बुला ला।"

सरला एक चेयर पकड़कर खड़ी हो गई। किसी अप्रिय प्रसंग की आशंका से उसका हृदय धड़कने लगा। व्याकुल मन से वह यह प्रतीक्षा करने लगी कि देखूँ क्या होता है।

राजेन्द्र बाहर के कमरे मे बैठा दो दिन पहले आई हुई ज्ञानेन्द्र की चिट्ठी का उत्तर लिख रहा था। अन्नपूर्णा के मुख से सब हाल सुनकर ज्ञानेन्द्र ने उसे खूब ही फटकारा था।

उस चिट्ठी को पढ़कर राजेन्द्र वेदना से भरी हँसी हँस पड़ा। वह सामने कागज़ रखकर सोचने लगा कि किस प्रकार लिखूँ जिससे ज्ञानेन्द्र यह जान ले कि मैं खेलने का खिलौना नहीं हूँ। उसकी इच्छा और रुचि के उपर किसी की जबरदस्ती नहीं चल सकती। वह इन बातों को ऐसे शब्दों में लिखना चाहता था कि ज्ञानेन्द्र सहज में ही समझ जाय। जब वह सच्चे और साफ शब्दो मे पिता के आगे अपनी इच्छा प्रकट करने गया था तब तो उन्होने उसकी बात सुनने की कोई आवश्यकता नहीं समझी। बल-पूर्वक जजीर पहना ही देने में उन्होने अपने कर्तव्य की इति-श्री समझी थी। परन्तु अब वह भली भाँति समझ गये होंगे कि मै उस जजीर मे नहीं बँध सका। मै भी एक स्वाधीन मनुष्य हूँ। इन्हीं सब बातो को वह चिट्ठी में प्रकट कर रहा था कि पिता का बुलावा आ पहुँचा। मन की उसी तिक्त अवस्था मे वह वहाँ चला गया और उसी स्थान पर सरला को बैठी देखकर और भी चिढ़ गया। तुरन्त हीं उधर से नेत्र फिराकर उसने पूछा, "बाबूजी, क्या आपने मुझे बुलाया है?"

जगदीश बाबू बोले, "हाँ। तुम्हारे उस कारखाने से कुछ उत्तर आया या नहीं?"

राजेन्द्र आजकल बम्बई के एक कारखाने की मैनेजरी के लिए लिखा-पढी कर रहा था। जगदीश बाबू चाहते थे कि वह अपनी जमींदारी का कारबार देखे; परन्तु राजेन्द्र का मन उस काम में न लगता था। उसने कहा कि वह पहले यह काम कर देखे, फिर जमींदारी का काम करने की चेष्टा करेगा। इस समय जगदीश बाबू ने उसी के विषय मे पूछा था। राजेन्द्र ने पिता की बात के उत्तर मे कहा, "अभी तक तो कुछ भी उत्तर नहीं आया।"

"अच्छा तो जब तक कुछ उत्तर आये, तुम एक बार हरि-द्वार जा सकते हो?"

"हरिद्वार?"

"हाँ। हरिद्वार। बहू के नानाजी का शरीर अच्छा नहीं है। इसी से उन्होने तुम्हे और बहू को देखने की इच्छा प्रकट की है। इस समय तुम्हें अवश्य जाना चाहिए।"

राजेन्द्र ने कुछ उत्तर न दिया।

जगदीश बाबू ने फिर कहा, "तो तुम आज ही जाकर एक चिट्ठी बनारस लिख दो कि भूपेन तुम्हारी माँ को लेकर तुरन्त चला आवे। देर न करे।"

यह सब बात सुनकर सरला के हृदय मे तूफान उठ खड़ा

हुआ। उसके नानाजी का स्वास्थ्य अच्छा नहीं है। बूढ़े आदमी है, न मालूम कब क्या हो जाय, इसका क्या ठिकाना है। इसी से उन्होंने सबको बुलाया है। असल बात का उन्हे क्या पता है। हाय किस निर्दयी से वह दया की आशा करते है! राजेन्द्र कुछ क्षण बाद बोला, "तो भूपेन ही बनारस से आकर हरिद्वार चला जायगा।"

जगदीश बाबू बोले, "हाँ। जा क्यो नहीं सकता? परन्तु तुम्हीं को जाने मे क्या कष्ट है? उन्होने तुम्हीं को तो देखने के लिए बुलाया है न?"

यह आज्ञा राजेन्द्र को बहुत बुरी मालूम हुई, परन्तु पिता के सामने वह कुछ बोल न सका और वहाँ से चला गया। जाते समय उसके त्योरी चढे उग्र मुख पर सरला की दृष्टि पड़ी। यह देखकर उसके भी छलछलाये हुए नेत्र सूखकर अग्निमय हो गये।

सरला के उदास मुख को देखकर जगदीश बाबू समझ गये कि वह अपने नाना के लिए चिन्ता कर रही है। उन्होने स्नेहमय स्वर से कहा, "तुम कुछ चिन्ता न करो बेटी। मै तुम्हे अवश्य ही हरिद्वार भेज दूँगा। तुम भी जाकर अपनी सास को जल्दी आने की एक चिट्ठी लिख दो। मै इस समय राजेन्द्र की कोई आपत्ति नहीं सुनूँगा। तुम निश्चिन्त रहो।"

बार कमरे में चारों ओर निगाह दौड़ाकर उसने सरला से कहा—मैं तुमसे कुछ कहना चाहता हूँ।

धड़कते हुए हृदय से सरला स्वामी की बात सुनने को उत्सुक हुई।

राजेन्द्र रुकते-रुकते बोला—हम लोग जो और दूसरे लोगो की तरह नहीं हैं, मै समझता हूँ कि तुम यह भली भाँति समझ गई होगी। अर्थात् हम लोग ठीक स्त्री-पुरुष की नाईं नहीं रहते और एक दूसरे से बिलकुल अलग है।

इतना कहकर राजेन्द्र ने सरला के मुख की ओर देखा परन्तु वहाँ उसे कोई भावान्तर न दिखाई पड़ा। उसने फिर कहना आरम्भ किया—देखो, मै तुम्हारे किसी काम मे हस्तक्षेप नहीं करता। करना भी नहीं चाहता। तुम इस ओर से बिलकुल स्वाधीन हो। इसी भाँति तुम भी मेरे साथ हरिद्वार जाने की इच्छा से मुझे निष्कृति दो। पिताजी से तुम यह ज़िद न करो।

सरला ने गर्वपूर्वक माथा ऊँचा करके कहा—अच्छा, यही होगा।

राजेन्द्र तुरन्त कुरसी से उठ गया। उठते-उठते वह व्यंग्यपूर्वक बोला—यदि पहले ही तुम यह चेष्टा करतीं तो मुझे तुम्हारे पास अनुरोध करने न आना पड़ता।

सरला ने इस बार उत्तर दिया—बाबूजी से भी यह बात कहने से काम चल सकता था।

राजेन्द्र ने फिर व्यग्य के भाव से कहा—नहीं चल सकता था। मेरी अपेक्षा बाबूजी तुम्हारी ही बात अधिक सुनते है।

राजेन्द्र चला गया। सरला दीर्घ निःश्वास त्याग करके बैठ गई। वह स्वामी से यह न कह सकी कि यह अभियोग बिलकुल मिथ्या है। उसने कभी उनके साथ हरिद्वार जाने की इच्छा नहीं की। न वह कभी कर ही सकती थी। इसके लिए यहाँ आकर उन्हे कोई अनुरोध करने की आवश्यकता न थी।

तेरहवाँ परिच्छेद

न्नपूर्णा ने अपने अन्तिम पत्र मे लिखा था, कि वह दो-तीन दिन बाद ही लौटेगी। आज उनके आने की प्रतीक्षा हो रही है। सरला, घर में कहीं कोई त्रुटि तो नहीं है, यह देखने और ठीक करने मे व्यस्त है। घर की स्वामिनी घर मे आकर उसे किसी प्रबन्ध के बहाने दोष न दे सकें, यह उन्हे वह अवसर नहीं देना चाहती थी।

राजेन्द्र अपने कमरे में बैठा हुआ ग्रामोफोन की सहायता से विपिन की हँसी का फ़व्वारा छुड़ा रहा था। साथ ही वह अपने मधुर और शिक्षित कंठ से स्वयं भी गा रहा था—

बन-बन ढूँढ़न जाऊँ कितहूँ छिप गये कृष्ण मुरारी ;
शीश मुकुट और कानन कुंडल वंशीधर मन रंग फिरत गिरिधारी।

अन्नपूर्णा के घर आने में अभी कुछ देर थी। सरला किसी काम के लिए पास के कमरे में आई थी। गाने का शब्द सुनकर खड़ी हो गई।

एक दासी ने आकर कहा, "बहूजी, बाग़ से माली एक बोझ मटर की फली दे गया है। उन्हे कहाँ रख दूँ ?"

सरला सिटपिटा गई। वह चुराकर गाना सुन रही है, दासी अपने मन में क्या सोचेगी ?

सरला आकर फिर अपने गृहस्थी के काम मे लग गई। ज़रा देर पीछे उसने आश्चर्य से देखा कि गम्भीर मुख से राजेन्द्र तितल्ले पर अपने सोने के कमरे मे जा रहा है। दिन मे वह उस कमरे में कभी नहीं जाता था। असमय उसे वहाँ जाते हुए देखकर सब ही लोग चकित थे। इसके अतिरिक्त उसका मुख भी असाधारण गम्भीर है। परन्तु इतना साहस किसी को न हुआ कि उससे जाकर इसका कारण पूछे।

अन्नपूर्णा की ट्रेन के आने मे अभी कुछ देर बाकी थी। अभी भूपेन्द्र का टेलिग्राम आया है कि दो घटे पहले कालरा से अन्नपूर्णा का देहान्त हो गया।

दुःख-भरे हृदय से राजेन्द्र सोच रहा है कि हृदय-रोग से पीड़ित पिता इस शोक का आघात सहन कर सकेंगे या नहीं। और इतना दुःख का समाचार वह पिता को किस प्रकार दे सकेगा ? यह सोचते-सोचते उसका हृदय उमड़ आया। आँखों से अश्रुधारा बहने लगी। वह एक मोटे तकिये

मे मुँह छिपाकर लेट गया। इतने दिनो तक उसने छोटी-बड़ी जितनी बातो में माँ को कितना कष्ट दिया था, वह सब स्मरण करके आज उसे अपार पश्चात्ताप हो रहा है। मन मे उसे रह-रहकर यही पछतावा हो रहा था कि वह कितना अभागा है जो अन्तिम समय में माँ के पास रहकर इन सब अपराधो की क्षमा भी नहीं माँग सका। आसपास के कई आदमी यह दु संवाद पाकर राजेन्द्र को सान्त्वना देने के लिए वहीं तितल्ले पर गये।

क्रमशः यह समाचार सरला के कानो में भी पहुँचा। सुनने ही पके फोड़े में ठेस लगने की भाँति वह एकबारगी सुन्न रह गई। पहले तो वह इस पर विश्वास ही नहीं कर सकी। परन्तु किस-किसका अविश्वास करे? सभी तो यह कह रहे है।

सरला को रह-रहकर सास की चलते समय की स्नेह-वार्ता याद आने लगी। क्या वह अन्तिम बाते थीं? इसी से इतना स्नेह उमड़ आया था। अकेली सरला अपने घुटनों मे मुख छिपाकर रोने लगी।

सन्ध्या समय जगदीश बाबू की मोटर द्वार पर आ लगी। आज सबेरे ही से वह किसी काम से बाहर गये हुए थे।

अन्दर आकर ऐसा शोकाच्छन्न और सुनसान घर देखकर वह आश्चर्य से पूछने लगे, "आज सब चुपचाप क्यों हैं रे? विपिन कहाँ है? बहू कहाँ है?"

श्वशुर की आवाज़ सुनकर सरला उनके सम्मुख गई और जिसमे यह भीषण संवाद वह एकदम न सुने, इसकी चेष्टा करने लगी।

जगदीश बाबू ने मुँह-हाथ धोकर जलपान किया और विश्राम करने के लिए अपने कमरे मे चले गये। अब तक सरला उनके पास ही बैठी थी। दो एक नौकरों को म्लान मुख इधर-उधर आते-जाते देखकर उन्होंने पूछा, "आज तो उनके आने की खबर थी। ट्रेन का समय भी बीत गया। वह आई क्यो नहीं ? भूपेन ने कुछ खबर नहीं भेजी, क्या ?"

सरला ने धीमे स्वर से उत्तर दिया, "सो मैं नही कह सकती।"

जगदीश बाबू ने राजेन्द्र को पुकारा। लाल आँखें किये राजेन्द्र किसी प्रकार पिता के सम्मुख आया। सन्ध्या हो गई थी। इसलिए उसके मुख का भाव अच्छी तरह दिखाई नहीं पड़ा।

जगदीश बाबू ने कहा, "राजेन्द्र, बनारस की कोई खबर मिली है क्या ? वह लोग क्यो नहीं आये ?"

राजेन्द्र ने टूटे गले से उत्तर दिया, "मिली है।"

पुत्र के दीन कंठ से चमकित होकर जगदीश बाबू बोले, "क्या ख़बर है ? देखूँ वह चिट्ठी।"

राजेन्द्र ने उत्तर दिया, "चिट्ठी नहीं है, टेलिग्राम है। खबर अच्छी नहीं है बाबूजी। आप........"उसका गला रुँधने लगा। उसके मुख से और कोई बात न निकल सकी।

जगदीश बाबू बोले, "देखूँ टेलिग्राम। अच्छा, तुम्हीं पढ़कर सुना दो। मेरे पास चश्मा नहीं है।"

राजेन्द्र ने पाकेट से कागज़ बाहर निकाला। उस समय काफी अँधेरा हो गया था; परन्तु राजेन्द्र ने सवेरे से वह टेलिग्राम इतनी बार पढा था कि उसे प्रायः मुखस्थ हो गया था। उसने अपने हृदय के वेग को रोककर उसे बिना पढ़े ही सुना दिया।

जगदीश बाबू अब तक बैठे थे। एक गहरी साँस लेकर वह बिना कुछ बोले आँखे मूँद कर लेट गये। पन्द्रह वर्ष की बालिका से लेकर अब तक के समस्त जीवन के सब दृश्य उनकी आँखो के आगे घूमने लगे। जीवन के तीन भाग जिस संगिनी को लेकर वह बिता चुके थे, हाय वह शेष भाग को छोड़कर कहाँ चली गई!

जगदीश बाबू के बाहरी व्यवहार मे अधीरता और व्याकुलता के कोई विशेष चिह्न नहीं दिखाई दिये। हाँ, उनकी गम्भीरता और भी बढ़ गई।

वह रात सरला और राजेन्द्र ने जगदीश बाबू के साथ ही बिताई। बाहर से चाहे वह कितने ही शान्त क्यो न

हों, भीतर-भीतर उन्हें कितनी वेदना हो रही है, यह बात वे दोनों ही समझते थे। अथच उनके हृदय के रोग मे इस सांघातिक घटना से यदि कोई विशेष कांड हो जाता, तो कुछ आश्चर्य न होता।

दूसरे दिन अत्यन्त भाग्यहीन के वेष में, नंगे पाँव, खाली सिर भूपेन्द्र वापस आ गया। उसे देखते ही सबका हृदय फटने लगा।

यथासमय श्राद्ध इत्यादि हो गये। श्राद्ध के समय विपिन के पिता प्रकाश भी आये थे। उन्होंने सोचा था, जाते समय विपिन को ले जायँगे।

इस घर में यदि विपिन के अतिरिक्त और भी कोई बालक होता तो प्रकाश यह न पहचान सकते कि उनका लड़का कौनसा है। विपिन भी इस नये आदमी को मामा के पास आठों पहर रहते देखकर बहुत दुखी रहता था। डर के मारे उसने मामा के पास जाना ही छोड़ दिया था। पिता-पुत्र इसी प्रकार परिचित थे।

प्रकाश ने जाने के दिन राजेन्द्र से कहा, "मेरी माँ ने कहा था कि आते समय विपिन को लेते आना। जो उसे देखती-भालती थीं वह तो स्वर्ग चली गईं। अब उसे अपने पास रखकर कष्ट ही होगा। इसके लिए तुम क्या कहते हो?"।

राजेन्द्र ने उत्तर दिया, "तो ले जाओ। इसमें कहना ही क्या है ? तुम्हारा लड़का है उसे ..... ।"

प्रकाश ने कुछ लज्जित होकर कहा, "नहीं, नहीं। यह बात मै थोड़े ही कह रहा हूँ। आप भी कैसी बाते करते हैं ? उसके ऊपर आपका मुझसे कुछ कम अधिकार नहीं है।"

जगदीश बाबू ने यह बात सुनकर कहा, "मैं इस विषय मे कुछ नहीं कह सकता। वह बहू के पास रहता है। उसने ही उसे पाल-पोसकर बड़ा किया है। उसे समझा-बुझाकर यदि ले जा सको तो ले जाओ। मैं कोई आपत्ति नहीं करूँगा।"

राजेन्द्र ने सरला की इच्छा जानने का भार भूपेन्द्र के ऊपर छोड़ा; परन्तु उस दिन भूपेन्द्र की तबियत अच्छी नहीं थी। उसने कहा, "भाभी के पास से विपिन को छुड़ा लाने का काम भाई साहब आप ही अच्छी तरह से कर सकेंगे। यह काम माँ नहीं कर सकीं। मै भी नहीं कर सकता। आप अवश्य अच्छी तरह से कर लेंगे। जाइए ना ?"

राजेन्द्र ने दाँतो से ओठ दबाकर एक तीव्र उत्तर दमन किया।

सरला आज कई दिन के बाद थोड़ा अवकाश पाकर विपिन के लिए कमीज़ सी रही थी। पास ही विपिन बैठा हुआ

अपनी नानी के सम्बन्ध में अनेक प्रकार के प्रश्न कर रहा था। उन सब प्रश्नों का उत्तर देते-देते सरला हैरान हो रही थी।

सहसा राजेन्द्र को देखकर वह चुप हो गई।

राजेन्द्र ने कहा, "प्रकाश विपिन को ले जाना चाहते हैं।"

सुनते ही विपिन सरला से चिपट गया और चिल्लाकर कहने लगा, "मैं नहीं जाऊँगा। कभी नहीं जाऊँगा।"

राजेन्द्र ने फिर कहा, "तुम्हे यदि कोई आपत्ति नहीं हो तो और किसी को भी कोई अधिक आपत्ति नहीं है।"

सरला का मुख पीला पड़ गया। विपिन अभी तक उसकी टाँगों से चिपटा हुआ था। उसे गोद मे उठाकर सरला ने दीन स्वर से कहा, "और कुछ दिन नहीं ठहर सकते?"

"जब भेजना ही है तो अनर्थक मोह बढ़ाने से क्या लाभ? ले जाना चाहते हैं, ले जाने दो। उनका लड़का है। हमारा क्या ज़ोर है?"

"माताजी के सामने क्यों नहीं ले गये?"

राजेन्द्र खीजकर बोला, "इस 'क्यों' का उत्तर मुझे नहीं मालूम। इस समय उनसे क्या कहूँ, यही बताओ।"

"मै नहीं भेजना चाहती।"

"अच्छा। जो तुम्हारी इच्छा।"

राजेन्द्र बाहर चला गया। सरला ने सन्तुष्ट होकर विपिन का मुख चूम लिया।

सरला सोचने लगी कि स्वामी की इस आज्ञा को न मान-कर क्या मैंने कुछ अपराध तो नहीं किया। यदि कुछ किया भी है तो इस मातृहीन बालक के लिए ऐसा अपराध करना अनुचित नहीं है। मेरी अपेक्षा विमाता क्या उसे अधिक आदर यत्न से रख सकेगी? इस पर भी यदि स्वामी क्रोध करें तो कर सकते हैं।

परन्तु सरला को यह देखकर बड़ा आनन्द हुआ क स्वामी ने बिना कुछ आपत्ति किये उसकी बात मान ली है। प्रकाश यह बात सुनकर अपने घर लौट गये। जाते समय कहते गये कि अच्छा थोड़े दिन और यहाँ रहने दो।

× × × ×

कुछ दिन और बीत गये। बाहर से कुछ विशेष भावान्तर न होने पर भी जगदीश बाबू का हृदय टूट गया था। नित्य नये-नये रोगों ने उन्हे अत्यन्त दुर्बल कर दिया। डाक्टरों ने उन्हे स्थान परिवर्तन करने की अनुमति दी। पहले तो उन्होने हँसकर कहा कि स्थान परिवर्तन ही करने तो जा रहा हूँ। देखना है भाग्य कहाँ ले जाता है!

परन्तु डाक्टर वर्मा जगदीश बाबू के पुराने हितैषी मित्र भी थे। उन्होंने जोर देकर कहा, "सो देखा जायगा। इस समय तो आपको पहाड़ पर जाना ही चाहिए।"

"पहाड़ पर! हृदय का दुख क्या पहाड़ जाने से अच्छा होगा?"

"नहीं, सो तो नहीं; परन्तु हृदय-रोग की अपेक्षा आपको अजीर्ण ही अधिक है। इस विषय में पहाड़ स्वाथ्यकर स्थान है।"

"यदि हरिद्वार जाऊँ तो कैसा रहे? यदि मर भी जाऊँ तो हर की पैड़ियों की प्राप्ति हो। लड़के-बहू भी साथ रहेंगे। अच्छा सुभीता होगा।"

"नहीं, सो नहीं हो सकता। प्रथम तो हरिद्वार स्वास्थ्य के लिए कोई विशेष उपयुक्त स्थान नहीं है और दूसरे रिपोर्ट मिली है कि वहाँ हैज़ा फैल रहा है।"

हताश भाव से जगदीश बाबू चुप हो रहे। नैनीताल जाना निश्चित हो गया। यह बात सुनकर राजेन्द्र खूब उत्साहित हो गया। वहाँ पर उसके अनेक मित्र हैं। वह लोग सब प्रबन्ध कर देंगे। किसी प्रकार का कष्ट न होगा। यह सब बात वह पिता को प्रसन्नतापूर्वक बताने लगा; क्योंकि वही तो साथ जायगा। भूपेन्द्र का मेडिकल कालिज खुलनेवाला था। उसे शीघ्र ही लखनऊ जाना होगा।

चौदहवाँ परिच्छेद

बहुत दिनो से सरला की माँ की कोई खबर नहीं मिली है। वह इसलिए मन ही मन बहुत चिन्तित हो रही है। नानाजी की बीमारी की खबर के बाद वहाँ का कुछ समाचार नहीं मिला था। न-जाने वह अब कैसे होंगे? माँ ने भी उसको कोई चिट्ठी नहीं लिखी। इससे उसे माँ के ऊपर बहुत अभिमान हो रहा था।

इस शोकार्त परिवार में सरला को अपनी चिन्ता करने का अवसर बहुत कम मिलता था। सबके शोकाश्रु वह अपने आँचल से पोंछती है; परन्तु वह अपने नानाजी के लिए किसी से कुछ नहीं कह सकती और न कोई कुछ पूछता ही है। उसे चिन्ता तो बहुत दिनो से ही थी; परन्तु उस दिन डाक्टर के मुख से हरिद्वार में कालरा होने की बात सुनकर वह और भी व्यग्र हो गई। दिल को तोड़ करके उसकी चिन्ता दिनोदिन बढ़ रही थी। हाय, ज्ञात होता है माता और नाना दोनों ही अब जीवित नहीं है! यह सोचकर सरला के हृदय में हथौड़े की चोट की भाँति वेदना होने लगी।

उसे ऐसा कोई भी नहीं दिखाई देता जिससे वह अपनी पीड़ा की बात कहकर हृदय का बोझ कुछ हल्का कर सके। श्वशुर तो हरिद्वार ही जाना चाहते थे ; परन्तु यह उसी का दुर्भाग्य समझो कि डाक्टर ने उन्हे यह अनुमति नहीं दी।

एक दूसरे कमरे मे बैठी हुई उर्मिला विपिन को खिला रही थी। बात-बात पर मचलकर और जिद करके विपिन उसे तंग कर रहा था। विपिन की दासी चमेली ने कहा, "बहूरानी तुम इस शैतान लडके को चुप नहीं करा सकोगी। उसे बड़ी बहूरानी को दे आओ। उनके पास जाकर आप ही चुप हो जायगा।"

उर्मिला इस घर मे नई आई थी। उसे सरला के विषय में कुछ ज्ञान नहीं था। उसने डरते-डरते कहा, "भाभीजी तो अपने कमरे मे है। वहाँ किस प्रकार जाऊँ ?"

दासी बोली, "अपने कमरे मे है तो क्या हुआ ?"

उर्मिला ने सकोच से उत्तर दिया, "वहाँ भाई साहब जो होगे ?"

दासी बोली, "हाय भाग्य ! वह क्या कभी उस घर की छाया मे भी खडे होते है ?"

उर्मिला यह सुनकर अवाक् रह गई। वह कुछ बोल न सकी। दिन-रात जिसके सहास्य मधुर वचनो से सारा घर प्रकाशमय रहता है, क्या यह प्रकाश उसके आनन्द का नहीं है ? क्या यह उसकी मन की अग्नि का धुआँमात्र है ?

उर्मिला को चुप देखकर दासी साहस पाकर बोली, "छोटे बाबू तो सब जानते हैं। उनसे पूछने से सब कुछ जान लोगी। जब माँजी थीं तो वह भी बड़ी बहूरानी को नहीं चाहती थीं। इनके आने के बाद से ही उनका मिज़ाज कड़वा हो गया था।"

उर्मिला ने रुकते-रुकते आश्चर्य से पूछा, "क्यों? उनमें क्या कुछ बुराई है?"

दासी ने उत्तर दिया, "सो कैसे जानूँ, बहूरानी। तब भी बड़े आदमियों का ख्याल ही तो है।"

उर्मिला ने यह प्रसंग दूर करने के लिए कहा, "रहने भी दो, चमेली। ऐसी बातें मुझे तो अच्छी नहीं लगतीं।"

यह कहकर उर्मिला विपिन को लेकर सरला के कमरे में जा खड़ी हुई। उसे देखकर सरला ने अपने आँसू पोंछ डाले और बनावटी हँसी मुख पर लाकर बोली, "क्यों उर्मिला मन उदास क्यों हो रहा है?"

उर्मिला ने हँसकर उत्तर दिया, "नहीं भाभीजी, मन तो अच्छा है।"

सरला हँसकर बोली, "तो क्या नींद आ रही है? आओ सुला दूँ।"

यह सुनकर विपिन चिल्ला उठा और बोला, "मामी मुझे बड़ी नींद लग रही है, मामी।"

सरला ने उससे हँसकर कहा, "तुझे नींद ? तेरे सोने का तो अभी समय नहीं हुआ। हाँ, छोटी मामी की ईर्ष्या अवश्य है !"

विपिन—नहीं मामी मुझे बहुत नींद आ रही है।

"अच्छा आओ"—कहकर सरला ने विपिन को बिछौने पर लिटा दिया और बोली—अच्छा, अब राजा बाबू की तरह से सो जाओ ।

उर्मिला बोली—भाभीजी, चमेली कह रही थी कि हम लोग नैनीताल जानेवाले है। क्या सच जायेंगे ?

"हाँ, सुना तो मैने भी है। सच है कि झूठ, यह अभी कुछ नहीं मालूम हुआ। ठीक नहीं कह सकती।"

"क्या हम लोग भी जायँगी ?"

"यदि ले जायँगे तो जा सकते हैं। तुम क्यों पूछ रही हो ?"

"यदि हमे ले जायें तो बहुत अच्छा हो। मैने आज तक कभी पहाड़ नहीं देखा। यह अवसर अच्छा है। किसी प्रकार एक बार देख लेती तो बड़ा अच्छा होता। तुम्हीं एक बार मेरे लिए भाई साहब से अनुरोध कर देना कि........।"

उर्मिला कहते-कहते रुक गई। वह बात जो वह अभी-अभी चमेली के मुख से जेठजी के सम्बन्ध में सुन आई है, उसके स्मरण हो आने के बाद उनके विषय में और कोई बात सरला के सम्मुख उसके मुँह से न निकल सकी।

उर्मिला की आधी बात से ही सरला का मुख लाल हो गया था। उसने तब भी हँसकर कहा, "अच्छा, मै बाबूजी से तुम्हारी सिफारिश कर दूँगी। तुम जाना चाहती हो, यह सुनकर वह अवश्य तुम्हे ले जाने के लिए राज़ी हो जायँगे।"

उर्मिला व्यस्त होकर बोली, "नहीं, नहीं, भाभीजी। उनसे कुछ न कहना। एक तो यो ही उनका शरीर अच्छा नहीं है। ऊपर से यदि हम लोग भी उन्हे विरक्त करेगे तो वह क्रुद्ध हो जायँगे।"

"नहीं नाराज़ न होगे। तुम इसकी चिन्ता न करो"—कहकर सरला बिछी हुई चटाई के ऊपर लेट गई। आलस्य की भंगी से उसका मलीन मुख और भी मुरझा गया था। हँसी द्वारा रोदन ढाँपने की चेष्टा करने से जैसी दबी हुई अग्नि धूँ धूँ करके सुलग उठती है, इसी प्रकार वह अग्नि भीतर ही भीतर फैलने लगी। वह अब और अधिक भीतर ठहरना नहीं चाहती थी।

शाम हो गई थी। सरला श्वशुर की इस समय की औपध का प्रबन्ध करने के लिए उठ गई।

उस कमरे मे जाकर सरला ने देखा कि ज़मींदारी के काग़ज़ फैले हुए है और राजेन्द्र उन्हे जगदीश बाबू की आज्ञानुसार शुद्ध करके उन पर लिख रहा है। इन आवश्यक काग़ज़ों को ठीक किये बिना जगदीश बाबू का बाहर जाना सम्भव नहीं है। इसी लिए इतनी शीघ्रता है।

राजेन्द्र इन लम्बे-लम्बे पीले रंग के बही-खातों से बहुत घबराता था; परन्तु इस समय नैनीताल जाने की खुशी और पिता की आज्ञा से बाध्य होकर काम कर रहा था। भूल भी कम नहीं हो रही थी, जिससे जगदीश बाबू बीच-बीच में विरक्त हो उठते थे।

सरला ने सिर नीचा करके कमरे मे प्रवेश किया। काम के समय व्यर्थ संकोच करने का जगदीश बाबू का स्वभाव न था। इस समय भी नहीं किया। उन्होने हाथ से काग़ज़ नीचे रखकर कहा—दवा लाई हो? अच्छा लाओ।

दवा पीकर जगदीश बाबू बोले, "बहू, ज़रा देर बाद थोड़ी देर के लिए यहाँ आना। एक काम है।"

कुछ देर बाद श्वशुर की आज्ञानुसार सरला फिर वहाँ आई, पर राजेन्द्र और जगदीश बाबू की बातचीत की आहट पाकर बरामदे में ही रुक गई। उसने सोचा कि बातचीत बन्द हो जाने पर जाऊँगी। लम्बे बरामदे की नीचे की सीढ़ी के पास तीन बड़े-बड़े गमलो मे फूलदार पौधो में अजस्र फूल खिल रहे थे। उनकी सुगन्ध से सारा बरामदा महक रहा था। आधा घटा बीत गया; परन्तु पिता-पुत्र की बातचीत अभी तक बन्द नहीं हुई।

उधर विपिन ने इतनी देर में उर्मिला को तंग कर डाला था। सरला जाकर उसे ले आई और जगदीश बाबू के कमरे में

जाते-जाते उससे कहने लगी, "देखो, उस कमरे मे जाकर तुम शरारत मत करना। चुपचाप बैठ जाना।"

"क्यों मामी ? क्या नानाजी की तबियत अच्छी नहीं है ? इसी लिए ना ?"

"हाँ। नहीं तो वह नाराज़ हो जायँगे और तुम्हे डॉटेगे।"

"वाह ! नानाजी तो मुझे बहुत प्यार करते हैं। वह बहुत अच्छे है। कभी भी नहीं डाँटते। हॉ, बड़े मामा अच्छे नहीं है। वह डॉटा करते है।"

"इस विषय मे देखता हूँ किसी को भी सन्देह नहीं है। क्यो विपिन ?" पीछे से राजेन्द्र की आवाज़ सुनकर सरला खड़ी रह गई। राजेन्द्र ने हँसते-हँसते सामने आकर कहा, "क्यो रे विपिन तुम लोग क्या कह रहे थे ? मेरी निन्दा कर रहे थे ?"

सरला कुछ कहने को उद्यत हुई ; परन्तु फिर न-जाने क्या सोचकर रुक गई और दूसरी ओर जाने लगी। यह देखकर राजेन्द्र ने कहा, "तुम्हे पिताजी बुला रहे है। जाओ।"

"जाती हूँ"—कहकर सरला चलने लगी। परन्तु विपिन उसका ऑचल पकड़कर ज़िद करने लगा, "मुझे यह फूल तोड़ दो मामी।"

"फूल तोड़कर क्या करोगे ? तोड़ने से यह फूल खराब हो जाते है।"

"हूँ। खराब नहीं होगे। देखो मामा भी तो फूल लिये है।"

सरला ने देखा कि राजेन्द्र सीढ़ी पर खड़ा विपिन को फूल दिखाकर कह रहा था, "अहा ! कैसी अच्छी महक है।"

"अच्छा तो तुम भी जाकर फूल ले लो"—कहकर सरला विपिन को वहीं छोड़ कमरे में चली गई।

सरला को आते देखकर जगदीश बाबू ने कहा, "आ गई बेटी। हमारा नैनीताल जाना तो ठीक हो गया। अब बताओ कौन-कौन जायगा।"

सरला ने कुछ उत्तर न दिया।

जगदीश बाबू ने फिर कहा, "तुम्हें तो जाना ही होगा। छोटी बहू भी जायगी क्या ?"

"हाँ, उर्मिला की तो बहुत इच्छा है। उसने कभी पहाड़ देखा भी नहीं है।"

"तो ठीक है। उसे भी चलने दो। अब भूपेन की बात रह गई। उसे परीक्षा के लिए लखनऊ जाना है। जब समर वैकेशन के लिए कालिज बन्द हो जायगा तो वह भी आ जायगा। दिन कौन-सा निश्चित करना ठीक होगा ?"

सरला ने मृदु स्वर से उत्तर दिया, "जब आपकी आज्ञा हो।"

"यह महीना तो समाप्त हुआ ही चाहता है। आज शायद २९ तारीख़ है न ?"

"हाँ।"

"तब दूसरी तारीख़ को चलना ठीक होगा। मै एक बार लड़को से भी पूछ लूँ।"

सरला दो-एक ज़रूरी बात कह-सुनकर चली आई। तब भी राजेन्द्र फूल तोड़-तोड़कर विपिन को दे रहा था।

लौंग की तरह के छोटे-छोटे फूल एक-एक पाकर विपिन तृप्त न होता था। वह हर बार झुँझलाने लगता था। यह देख-कर राजेन्द्र उसे चिढ़ाने के लिए फूल देने में और भी देर कर रहा था। एक बार उसकी ओर देखकर सरला अन्यत्र चली गई।

पन्द्रहवाँ परिच्छेद

एक बडे झरने के थोड़ी दूर पर, लाल मिट्टी की भूमि पर, अनेक प्रकार के फूल के वृक्षों से घिरा हुआ एक सुन्दर बँगला है। उसके चारो ओर बहुत-से देशी और विलायती फूलो के वृक्ष और देवदारु, अखरोट आदि के पेड़ों के झुंड एकदम चित्र की भाँति सुशोभित हो रहे है। बँगले के समीप एक झरना पाँच धाराओ मे गिर रहा है। उनका पानी पत्थर की बड़ी-बड़ी चट्टानो पर होता हुआ कलकल करता हुआ बहता चला जा रहा है। बहुत-से देशी और विलायती फूलो से घिरा हुआ एक गुफा के अन्दर दो चट्टानो के मध्य शिव भगवान् का मन्दिर है। भगवान् की मूर्ति के ऊपर निर्मल पवित्र जल की एक धारा गिर रही है। बँगले की एक ओर सुन्दर हमवार घास का लान है जिसके चारो ओर थोड़ी-थोड़ी दूर सगमरमर की मूर्तियाँ लगी हुई हैं। बीच-बीच मे लाल पत्थर की बेचे लगी हुई है। लान के चारो ओर बहुत-से विलायती फूल, गन्धहीन होने पर भी,

अपने रंग-रूप के कारण लोगों की दृष्टि अपनी ओर आकर्षित कर लेते हैं। कई रंग-बिरगी छोटी-छोटी चिड़िये एक अखरोट के पेड़ के ऊपर बैठी हुई चीं-चीं कर रही हैं। थोड़ी-थोड़ी देर के बाद सब एक साथ मिलकर एक पेड़ से उड़कर दूसरे पर जा बैठती हैं। दूसरी ओर दाड़िम के एक पेड़ पर बैठा हुआ एक तोता अपनी चोंच से फल काट-काटकर नीचे गिरा रहा है। इसी लान के ऊपर विपिन एक सजीव फूल की भाँति दौड़ता फिर रहा है।

एक सप्ताह हुआ जगदीश बाबू सरला, राजेन्द्र, उर्मिला और विपिन को लेकर नैनीताल आ गये है। सरला को अभी तक हरिद्वार का कोई समाचार नहीं मिला है। इसलिए उसके मन में अनेक दुश्चिन्ताएँ उठा करती है।

यहाँ आने पर कई दिन तक तो उसे काम-काज की भीड़ में कुछ सोच-विचार करने का अवसर ही नहीं मिला था। अब कल से सब चीज़-वस्तु ठीक-ठिकाने रखकर उसे कुछ शान्ति मिली है। इसी लिए चिन्ता ने अब उसे फिर घेर लिया है।

नई जगह आकर भी उसके उत्साह में कुछ वृद्धि नहीं दिखलाई देती। उर्मिला भी जितने उत्साह से यहाँ आई थी, उतना आनन्द अब उसे यहाँ नहीं रहा; क्योंकि यहाँ आने पर उसे मालूम हुआ कि उसकी छोटी बहिन सुधा का विवाह है। वह वहाँ जाने के लिए चंचल हो उठी है।

सरला उर्मिला के लिए एक लेस बुन रही थी। उर्मिला पास बैठी हुई एकाग्र मन से उसे देख रही थी। क्षण भर बाद बोली, "कई एक चिट्ठियों का उत्तर देना है। जाऊँ लिख दूँ।"

"जाओ न।"

"तुम अभी बैठी-बैठी बुनती ही रहोगी?"

"और इस समय काम ही क्या है?"

"अच्छा, तुम बैठी-बैठी तपस्या करो। मै जाती हूँ।"

"क्या कहा तुमने?"

"उर्मिला ने हँसकर उत्तर दिया, तुमने समझा नहीं क्या? मै अनुमान करती हूँ, आजकल तुम्हारी तबियत ठीक नहीं है, भाभीजी।"

सरला यह सुनकर चौंक पड़ी। दूसरे क्षण उसने हँसकर कहा, "यह क्या बात है, उर्मिला? मेरी तबियत अच्छी न होने का तुमने कौन-सा चिह्न देखा है?"

उर्मिला ने उत्तर दिया, "सत्य तुम इतने दिनों से बाप के घर नहीं गईं। जो तुम्हारे स्थान पर मै होती तो मर ही जाती।"

सरला कुछ हँसकर बोली, "हूँ, यदि मरना सम्भव होता तो मै भी मर ही जाती। बचती नहीं। अच्छा, तुम जिस काम के लिए जा रही थीं जाओ न? मेरे ऊपर इतनी नजर रखने की तुम्हे क्या चिन्ता है?"

"अच्छा, जाती हूँ। भाभीजी मै देवता नहीं हूँ ; इसी से नज़र पड़ ही जाती है।"—यह कहकर उर्मिला चली गई।

सरला फिर अपने काम में मन लगाने की चेष्टा करने लगी। इन सब बातों से उसके मन मे फिर भावों की आँधी उठने लगी थी। वह उन भावों को दबाने की बराबर चेष्टा करती रहती है। फिर भी मनुष्य तो प्रकृति की सन्तान है, उसके विरुद्ध कब तक जोर चल सकता है?

स्वामी के साथ वह एक ही घर में रहती है ; परन्तु किसी-किसी दिन तो दिन-भर में एक बार देखने का भी सुयोग प्राप्त नहीं होता, अथवा सुयोग मिलने पर वह स्वयं उपेक्षा कर देती है, क्योंकि व्यर्थ की कंगाली चेष्टा करना उसके स्वभाव के विरुद्ध था। तब भी उनके पाँवों की आहट, हँसी की ध्वनि और शरीर की वायु के लिए ही क्या उसके नारी के प्राणो का अनिर्वचनीय छिपा हुआ आनन्द उसकी हृदय-तन्त्री को मधुर स्वर से बजा नहीं देता था? स्वामी से स्त्री को जो कुछ न्यायतः पाने का अधिकार है, वह उसे नहीं मिला। तब भी वह भीख माँगकर दया का दान नहीं लेना चाहती। परन्तु बिना माँगे ही जिन बातों से उसे थोड़ासा आनन्द मिल जाता है, वह उन्हे क्यो छोड़ दे?

हाथ का काम हाथ में लिये ही वह बैठी थी। हठात् विपिन का शब्द सुनकर उसने सिर उठाकर देखा। सामने

ही विपिन को गोद में लिये स्वामी खड़े हैं। उनके हाथ मे एक लिफ़ाफा है।

राजेन्द्र को देखकर सरला संकोच से सिर पर आँचल डालकर उठ खड़ी हुई और उनके हाथ की चिट्ठी पर एक दृष्टि डालकर चुप रह गई। कुछ पूछा नहीं।

राजेन्द्र बोला, "सुना था कि तुम चिट्ठी के लिए बहुत चिन्ता कर रही थीं। यह लो तुम्हारी चिट्ठी आई है।"

यह सुनकर सरला के मुख पर प्रसन्नता छा गई; परन्तु स्वामी के हाथ से चिट्ठी ले लेने का उसे साहस नहीं हुआ। वह व्यग्र भाव से स्वामी के हाथ की ओर देखने लगी।

"चिट्ठी के लिए इतनी व्याकुल थीं न, सो लो यह चिट्ठी।"

"कौन कहता है कि मैं चिट्ठी के लिए व्याकुल हो रही थी?"

"किसी ने कहा हो, कुछ दोष की बात तो नहीं है?"

"दोष क्या होता? इस प्रकार की चिन्ता का तो मैंने विचार ही छोड़ दिया है, उनके हिसाब से तो मैं जीवित ही नहीं हूँ।"

राजेन्द्र अपनी स्वाभाविक सरलता से कुछ हँसा। उसकी इस हँसी में पहले-जैसी अवज्ञा का विष नहीं था। न-मालूम क्या सोचकर राजेन्द्र ने चिट्ठीवाला हाथ सरला की ओर बढ़ाया; परंतु सरला के कुछ कहने से पहले ही विपिन ने जल्दी से राजेन्द्र के हाथ से चिट्ठी लेकर सरला को दे दी। राजेन्द्र का सुन्दर मुख ज़रा देर के लिए लाल हो गया।

सरला ने चिट्ठी लेकर हाथ मे दबा ली। ओह, कितने दिन की वेदना सहन करने के उपरान्त यह माँ के हाथ की लिखी चिट्ठी उसे मिली है, यह उसने सिरनामा देखते ही समझ लिया था ; परन्तु स्वामी के सामने चिट्ठी खोलते उसे बड़ी लज्जा आई।

राजेन्द्र घर की चीज़-वस्तु इधर-उधर करके देखने लगा। ब्रेकेट पर एक पुस्तक रक्खी थी, उसमे पढने के स्थान पर निशान के लिए एक हेयर पिन रक्खा था। राजेन्द्र ने पुस्तक उठाकर मुस्कराकर पूछा, "यह पुस्तक तुम पढ़ रही थीं ?"

"नहीं। उर्मिला पढ़ रही थी।"

"तुम भी तो खूब पढ़ती हो, क्यो ?"

"हाँ, कभी-कभी।"

"बचपन से ही पढती हो ?"

सरला भीतर ही भीतर चिट्ठी पढ़ने के लिए उत्सुक हो रही थी। फिर भी वह शान्त स्वर से ही बोली—हाँ, तब तो छोटी-छोटी पुस्तके पढा करती थी।

राजेन्द्र—वही छोटी पुस्तक, बाल-वाटिका ?

सरला का मुख अपमान से काला हो गया। वह मन में सोचने लगी, यह क्या बीच-बीच मे एक-आध बार मुझे चिढाने और व्यंग्य करने के लिए ही आया करते हैं ? वह सिर नीचा करके हाथ की चिट्ठी का कोना नाखून से नोचने

लगी। उसने देखा कि उसके हाथ में लिफाफ़े के अतिरिक्त एक पोस्टकार्ड भी है। उसने पोस्टकार्ड को टेबुल पर रखकर कहा, "यह मेरा नहीं है।"

"तुम्हारा नहीं है, देखूँ। हाँ अच्छा, यह तो ज्ञान का पत्र है। उसने भी यहाँ गर्मियो की छुट्टियो में आने को लिखा है। कल या परसों वह यहाँ आ पहुँचेगा।"

सरला अनमने भाव से खड़ी थी, उसने कुछ उत्तर न दिया।

राजेन्द्र ने फिर कहा, "तुम शायद ज्ञान को नहीं पहचानतीं?"

"जानती क्यों नहीं? वही बनारसवाले ही तो?"

"हाँ वही, बनारस से ही आयेगा। वह ..."

इसी समय उर्मिला कमरे मे आते-आते राजेन्द्र को वहाँ देखकर दाँत से जीभ दबाकर लौट गई।

इस समय विशेषकर सरला के कमरे में जेठ को उसने कभी न देखा था, इसी से निर्भय आ रही थी। उर्मिला को देखकर राजेन्द्र व्यस्त भाव से वहाँ से चला गया। जल्दी मे ज्ञानेन्द्र का पत्र वहीं रह गया।

सरला क्षण भर हतबुद्धि-सी खड़ी रहकर अपने हाथ की चिट्ठी खोलने लगी। माँ ने लिखा था, वह पितापुत्री दोनो ही बीमार हो गये थे। इसी लिए पत्र नहीं लिख सकी थी। अब अच्छे हैं; परन्तु उनके पिता का शरीर अब भी दुर्बल है। अभी विशेष चल फिर नहीं सकते। सरला को उन

लोगों ने बहुत दिनों से नहीं देखा है। इसलिए उन्होंने पूछा था, यदि उसके नाना उसे लेने आये तो समधी महाशय भेज देंगे या नहीं ?

हठात् विपिन ने आकर सरला का आँचल खींचकर कहा, "मामी, ओ मामी।"

सरला ने उसका मुख चूमकर पूछा, "क्यो बेटा, क्या हुआ ?"

अभिमान से ओंठ फुलाकर विपिन ने कहा, "छोटी मामी मुझे लिखने नहीं देतीं। तुम चलकर उन्हे धमका दो। चलो।"

सरला—अच्छा, धमका दूँगी। परन्तु तुमने यह क्या किया है ? हाथ मे इतनी स्याही कहाँ से लगाई ? पागल लड़का शैतान।"

विपिन ने अपने छोटे-छोटे हाथो को मुख और आँखों पर रगड़कर कहा, "स्याही कहाँ लगी है। देखो पोंछ डाली।"

सरला ने मुस्कराकर कहा, "हाँ पोछ तो खूब डाली है। चलो धो दूँ।"

उर्मिला ने हँसते-हँसते आकर कहा, "हूँ, भाभीजी के आगे मेरी नालिश हो रही है ? सुनो भाभीजी। इन्होंने सारे घर मे स्याही फैलाई है। सारे शरीर पर लगाई है। दावात नहीं फोड़ सके हैं, इसी लिए इतना बिगड़ रहे हैं।"

विपिन ने गरदन टेढ़ी कर मुँह फुलाकर कहा, "तुम अच्छी नहीं हो। बड़ी बदमाश हो।"

"अच्छा—अच्छा, तुम तो बहुत भले हो।"—कहकर उर्मिला ने उसकी ठुड्डी हिला दी।

विपिन ने अपना कोमल मुख भारी करके उर्मिला का हाथ झटक दिया। उर्मिला हँसकर बोली, "देखो, भाभीजी देखो। बाबू साहब को भयानक क्रोध चढ़ आया है। अच्छा, अब आओ तुम्हारा मुँह धो डालूँ।"

विपिन—नहीं तुमसे नहीं धुलवाऊँगा। जाओ।

सरला विपिन को गोद में ले जाकर और साबुन से उसका हाथ-मुँह धोकर लौट आई।

उर्मिला ने पूछा, "क्या समाचार है, भाभीजी? माताजी अच्छी तो है न?"

सरला ने चिट्ठी देकर कहा, "लो पढ़कर देख लो।"

उर्मिला के हाथ मे पत्र देकर सरला विपिन को खाना खिलाने ले गई। उसके बाद ही जगदीश बाबू की दवाई और भोजन का समय हो जायगा। उनके सब गुणों में केवल यही एक दोप था कि वह अपने शरीर का कुछ भी ध्यान न रखते थे। कभी-कभी वह कहा करते—तुम लोगो ने तो मुझे एकदम छ: महीने का बालक बना दिया है। मालूम होता है, कुछ दिनो बाद मै पाँव चलना भी भूल जाऊँगा।

परन्तु सत्य तो यह है कि जगदीश बाबू ने अपने आप को एकबारगी ही इन लोगों के हाथो मे छोड़ दिया था।

वह किसी बात का प्रतिवाद न करते थे। वह सदैव से ही गम्भीर प्रकृति के मनुष्य थे। इस निर्वाक् सेवापरायण, सहनशील प्रकृति की सरला को वह दिनोंदिन स्नेह और श्रद्धा की दृष्टि से देखते थे। बहुत-से दहेज और धन की ओर न देखकर जिन गुणों की प्रशंसा सुनकर वह सरला को अपने घर लाये थे, यदि उन गुणों में वह ज़रा भी दोष पाते तो उनके क्षोभ की सीमा न रहती; क्योंकि इस विवाह के लिए सम्पूर्ण रूप से वही जिम्मेदार थे।

परन्तु इस समय जगदीश बाबू सरला को अपने गर्व का कारण समझते हैं। विपिन की आरोग्य देह और उसका प्रफुल्ल सौन्दर्य देखकर उनके मन मे विचार होता कि सुलता का एकमात्र चिह्न क्या उनके घर मे टिक सकता था, यदि सरला अपने स्नेहांचल से उसे ढककर न रखती। सरला ने ही इस मातृहीन शिशु को बचा रक्खा है।

सोलहवाँ परिच्छेद

रने के पास खड़े होकर राजेन्द्र एक झाऊ के वृक्ष की पत्तियाँ नोचते-नोचते ज्ञानेन्द्र से बातचीत कर रहा था।

ज्ञानेन्द्र—चार महीने पहले तुम्हे दादा कह चुका हूँ, यह सोचकर तुम्हारा सकोच न करूँगा। तुम.... .

राजेन्द्र—(हँसकर) क्यो इसका कारण अच्छा अब समझा। तुम्हारे बालक की आयु ज्ञात होता है चार ही मास की है।

"तुम्हारी बुद्धि की प्रशंसा करता हूँ। क्या माने निकाले हैं ? वाह !"

"यह नहीं मानते तो फिर तुम्हारी बात का क्या मतलब है ? बताओ।"

"यह मैं कभी नहीं मानता। मै जो तुमसे कहना चाहता हूँ, उसे तुम बड़ी चालाकी से रोक रखना चाहते हो। बात उठाने ही नहीं देते।"

"तो क्या कहना चाहते हो, कहो न ? मैं तुम्हें क्यों रोकूँगा ?"

"अच्छा, बताओ भाभी तो बिलकुल निर्दोष है, फिर तुम उन्हे क्यों नहीं पसन्द करते ? देखो, सच-सच बताना।"

"कौन कहता है कि मुझे पसन्द नहीं है ? मैंने तो कभी किसी से गुण-दोष की शिकायत नहीं की।"

राजेन्द्र के गले का स्वर कुछ नरम और गाढ़ था।

ज्ञानेन्द्र—किसी ने भी नहीं कहा। भला मुझसे कौन कहने जाता। मै तो तुम्हे आरम्भ ही से पहचानता हूँ। परन्तु तुम अपने कर्तव्य की इस प्रकार अवहेलना कर सकते हो, यह मैं न जानता था। तुम यह इतना अनर्थ क्यों कर रहे हो, भाई ? तुम तो बहुत सुशील लड़के थे।

क्षण भर बाद कुछ सोचकर राजेन्द्र हँसकर बोला, "यह तो बड़ी मुश्किल हुई। आज तुमने सत्य ही मुझे सताने पर कमर बाँधी है। और भी जो कुछ कहना-सुनना हो झटपट कह डालो।"

"निश्चय मै पहले ही समझ रहा था कि तुम बनाओगे। अच्छा, सुनो। वह जो लावण्य थी न जिसके साथ तुलना करने जाकर ही तुम . .?"

दाँत से ओंठ दबाकर रुष्ट स्वर से राजेन्द्र बीच ही मे बोल उठा, "फिर वही बात। बदमाश पाजी कहीं का। वही बात तूने कार्ड मे भी लिखी थी। बस, अब उसके बारे में आगे कुछ न कहना, समझे।"

"कभी नहीं। मै कभी चुप नहीं रहूँगा। तुम पहले मुझे यह समझा दो कि किस कारण और किसके लिए तुम इस गृहस्थी की शान्ति वर्षों से नष्ट कर रहे हो? और कब तक करोगे, इसका भी कुछ निश्चय है?"

"हूँ, मै गृहस्थी की शान्ति नष्ट कर रहा हूँ और मैं अपनेआप शायद बहुत शान्ति से हूँ न?"

ज्ञानेन्द्र—परन्तु यह तो तुम्हारी ही कामना और इच्छा से है। कर्तव्य भूलकर तुम क्यो मूर्ख बन रहे हो, यह मुझे समझा दो। बुआ इसी कारण कितना गहरा दुख हृदय में लेकर स्वर्ग चली गई। तुम इसे छिपाने की चेष्टा करते हो; परन्तु मै समझता हूँ।

राजेन्द्र सहज भाव से हँसकर बोला, "बस, तुम्हारा व्याख्यान समाप्त हो चुका न? अच्छा, मै तुम्हारी सब बातें बिना प्रतिवाद के माने लेता हूँ। परन्तु जैसे मै कुछ उत्तर नहीं देता, उसी प्रकार तुम भी और कुछ न बोलना। ज्ञान, तुम्हारी बाते मुझे अच्छी नहीं लग रही है, यह क्या तुम नहीं समझ रहे हो?"

ज्ञानेन्द्र—खूब समझ रहा हूँ। इसी से तो पूछ रहा था। नहीं तो यह मै अच्छी तरह जानता हूँ कि तुम्हारे मन मे तनिक भी प्रेम का अंश नहीं है। तुम मेरी बात का उत्तर क्यों नहीं देते? कुछ उत्तर अवश्य देना होगा।

राजेन्द्र ने अनमने भाव से डाल के सब पत्ते नोचकर समाप्त कर डाले। उसने कुछ उत्तर न दिया।

राजेन्द्र के उत्तर की क्षण भर प्रतीक्षा करके ज्ञानेन्द्र फिर बोला, "यदि तुम उससे तुलना ही करना चाहते हो तो वह भी यहीं मौजूद है। उस ओर सड़क के किनारे जो वह बँगला है, उसी में आजकल वह रहती है। सुन रहे हो न?"

राजेन्द्र झुँझलाकर बोला, "कौन तुम्हारी लावण्य की ख़बर जानना चाहता है? और उसके जानने से मेरी कुछ हानि-लाभ भी नहीं है। तुम लोग मुझे स्वार्थी कहते हो। भला बिना स्वार्थ का कार्य मै क्यो करने लगा?"

"ठीक है भाई। मै बातचीत मे तुमसे कभी जीत नहीं सकूँगा। तुम बड़े भाई हो, इसी से मै तुम्हारा मतलब नहीं समझ सकता। साफ-साफ़ कहो।"

"साफ़-साफ़ क्या कहूँ? मुझे तो कुछ भी कहना नहीं है। तुम्हारी उस चिट्ठी का मैने क्या किया, जानते हो?"

"नहीं। क्या किया?"

"जिसका पक्ष लेकर तुमने वह पत्र लिखा था, उसी के कमरे में छोड़ आया हूँ।"

"सो क्यों? स्वेच्छा से या भूलकर? तब तो मालूम होता है सन्धि हो गई। क्यों?"

"लड़ाई ही कब थी, जिसकी सन्धि होती। अच्छा जो

हुआ सो हुआ, अब और कोई दूसरी बात करो। उसका विचार छोड़ दो।"

"मै और कुछ नहीं कहता, भाई।"

यह झरना, जिसके पास यह लोग खड़े थे, उनके रहने के मकान के पिछवाड़े था। इसी से यह स्थान प्रायः निर्जन हो रह था। पहाड़ पर बहुत-से सुन्दर-सुन्दर वन-फूल फूल रहे थे जिससे इस स्थान की शोभा और भी मनोहर प्रतीत होती थी। पहाड़ के बाईं ओर एक बहुत सँकरी और टेढ़ी-मेढ़ी पगदंडी गई थी। उस पर रिक्शा या डॉडी नहीं जा सकती थी। केवल दो-चार शौकीन आदमी पैदल टहलने जाया करते थे।

सरला के कमरे का एक दरवाजा इस तरफ़ पड़ता था। वह कभी-कभी उसे खोलकर यहाँ एकान्त मे आ बैठा करती थी। उसके साथ विपिन भी यहाँ आकर खेलता था। विपिन का विश्वास था कि इस स्थान पर केवल उसका और उसकी मामी का ही अधिकार है। इस समय राजेन्द्र और ज्ञानेन्द्र को वहाँ पर बैठे देखकर उसने दौडते-दौड़ते आकर कहा, "मामी, ओ मामी। देखो, हमारे बैठने के वह पत्थर बड़े मामा ने ले लिये हैं। वह उन पर बैठे है। तुम चलकर देखो।"

सरला किसी काम में लगी थी। उसने बिना सिर उठाये ही कहा, "क्या हुआ? कैसे ले लिये, विपिन?"

विपिन ने सरला का हाथ पकड़कर खींचते हुए कहा,

"तुम उठो तो। देखो चलकर। मामा वहाँ जाकर उस पत्थर पर बैठे हैं।"

सरला ने मुस्कराकर कहा, "अच्छा तो है। उन्हीं को ले लेने दो, विपिन। अब हम तुम वहाँ जाकर न बैठा करेंगे।"

विपिन ने क्रोध से कहा, "नहीं। सो नहीं होगा। मैं अभी जाकर नानाजी से कह देता हूँ।"

"क्या है रे, विपिन? तू नानाजी से क्या कहेगा?"—यह कहते-कहते पीछे से ज्ञानेन्द्र ने आकर विपिन को गोद में उठा लिया। अनजान आदमी की गोद जाकर विपिन जल्दी कुछ उत्तर न दे सका। वह गरदन टेढ़ी करके आश्चर्य से उसे देखने लगा।

कुछ देर बातचीत करके विपिन का भय दूर हो गया। वह बोला, "तुम्हारा चश्मा क्या टूट गया?"

"मेरे पास चश्मा नही है। मैं चश्मा नहीं पहनता।"

सिर हिलाकर विपिन ने कहा, "हमारे बड़े मामा का चश्मा बड़ा सुन्दर है।"

"तुम्हारे मामा अन्धे है। उन्हे दिखाई नहीं देता।"

"हिश, मेरे मामा अन्धे नहीं है। मै भी बड़ा होकर खूब सुन्दर एक चश्मा लूँगा। अन्धा नहीं बनूँगा।"

ज्ञानेन्द्र खिलखिलाकर हँस पड़ा। बोला, "वाह! यदि चश्मा लोगे तो अवश्य अन्धा बनना पड़ेगा।"

"नहीं। मै अन्धा कभी नहीं बनूँगा।"—कहकर और

राजेन्द्र भी जो सरला के इन गुणों पर मुग्ध न हुआ हो सो बात नहीं है। सुख-दुख में जिसकी सहानुभूति से वह प्रति समय घिरा हुआ है, उसकी ओर से वह कब तक नेत्र बन्द करके रह सकता था? परन्तु इस समय उसकी विचित्र अवस्था है। इतने दिनों का गर्वोन्नत कठिन मन मानों उसके विजयी मस्तक को झुकाकर हार मानने नहीं देता। यह बात सोचते ही उसका रक्त गर्म हो उठता है। इन लोगों ने जो उसके प्रति अन्याय किया है, उसे वह सिर झुकाकर चुपचाप सहन नहीं कर सकता।

एक दिन सायंकाल के समय राजेन्द्र और ज्ञानेन्द्र घूमने गये थे। विपिन भी उनके साथ था। विपिन को साथ ले जाने की इच्छा राजेन्द्र को तो ज़रा भी न थी। ज्ञानेन्द्र के ही आग्रह से उसे साथ ले गया था।

दिन छिप गया। बिजली के लैम्पों ने पहाड़ी सड़कों को प्रकाशमय कर दिया। शीतल वायु वेग के साथ झील के चारों ओर बहने लगी। झील के जल में हवा के कारण लहरें उठने लगीं। इस समय भी राजेन्द्र और ज्ञानेन्द्र विपिन को बीच में बिठाकर, नाव पर ताल की सैर कर रहे थे।

इधर सरला विपिन के लिए चिन्ता कर रही थी। जब वह घूमने गया था तब उसे यह विचार न था कि उसे लौटने

में इतनी देर हो जायगी। इसी लिए उसे इस शीत से रक्षा करने के लिए अधिक गर्म कपड़े नहीं पहनाये थे।

विपिन के आने के साथ ही सरला उसे गर्म कपड़े पहना-कर खाना खिलाने ले गई; परन्तु वह अनेक प्रकार के बहाने करने व रोने लगा। सरला ने उसे किसी प्रकार थोड़ा-सा दूध ही पिलाकर सुला दिया।

रात को जब सरला सोने गई तो उसने देखा कि विपिन का शरीर खूब तप रहा है। सरला का हृदय धड़कने लगा। विपिन तो कभी बीमार नहीं होता था। इस पहाड़ी देश में आकर उसे ज्वर क्यों आ गया?

सरला सोचने लगी कि अब क्या करे? श्वशुर एक तो वैसे ही शोक से सतप्त हैं, दूसरे उन्हे हृदय का रोग है। इतनी रात को उन्हे जगाना ठीक न होगा।

तब क्या वह स्वामी को ही खबर दे? उसके कमरे के पासवाले कमरे में ही तो वह हैं; परन्तु वह सोते है या जागते है, यह तो उसे मालूम नहीं है।

सरला बरामदे मे आकर सोचने लगी कि क्या उपाय करे।

घर के सब आदमी भोजन समाप्त करके सोने लगे थे। केवल जगदीश बाबू का बूढ़ा खानसामा बलदेव हाथ में लालटेन लेकर इधर-उधर देखता फिरता था कि कोई दरवाजा खुला तो नहीं रह गया है।

उसे देखकर सरला ने अश्वस्त होकर पूछा—बाबूजी क्या सो गये ?

बलदेव जल्दी से जाकर देख आया। आकर बोला, "हाँ, सरकार तो सो रहे है।"

सरला ने सोच-विचारकर बलदेव से राजेन्द्र को ही खबर देने को कहा। घर में किसी को समाचार दिये बिना उसकी चिन्ता कम नहीं हो सकती थी।

राजेन्द्र को खबर भेजकर वह विपिन का टेम्प्रेचर लेने बै ी। ज्वर काफी तेज था; परन्तु विपिन तब भी स्वस्थ भाव ही से सो रहा था।

बलदेव ने आकर कहा, "मैंने छोटे सरकार का दरवाजा कई बार खटखटाया; परन्तु कुछ उत्तर न मिला। मालूम होता है कि वह भी सो गये।"

तेज बुखार होने पर भी विपिन में कोई विशेष चंचलता न देखकर सरला ने और कुछ नहीं कहा। विपिन को गोद में लेकर बैठे-बैठे उसने रात्रि समाप्त कर दी। हाँ, बीच-बीच मे जब टेम्प्रेचर और तेज हो जाता था तो वह स्वयं उसके माथे पर जलपट्टी रख देती थी।

सवेरे बलदेव के मुख से विपिन के ज्वर की खबर सुनकर जगदीश बाबू ने आकर पूछा, "बहू, विपिन को ज्वर हो गया है क्या?"

सरला—"हाँ, खूब तेज़ बुख़ार है। सारी रात एक बार भी आँख नहीं खोली। और अब भी बेसुध पड़ा है।"

जगदीश बाबू ने विपिन के माथे पर हाथ रखकर कहा, "ज्वर कब से आया है, बहू?"

सरला—मैंने पहली बार जब देखा तब रात के ग्यारह बजे थे। बलदेव को आपके पास भेजा था; परन्तु आप सो गये थे।

जगदीश बाबू चिन्तित भाव से बोले, "यही तो। नई जगह है। अच्छा, जाकर डाक्टर को बुलवाता हूँ।"

सरला ने पूछा, "परन्तु आपके लिए दवा........।"

जगदीश बाबू उसकी बात काटकर बोले, "वह सब बलदेव दे देगा आज तुम विपिन को छोड़कर मत उठो।"

जगदीश बाबू यह कहकर चले गये। इसी समय राजेन्द्र और ज्ञानेन्द्र भी एक साथ उस कमरे में चले आये।

ज्ञानेन्द्र आते ही बोला, "क्यों रे विपिन, क्या हुआ? बुख़ार आ गया?"

राजेन्द्र एक चेयर की आशा में इधर-उधर देख रहा था; परन्तु वहाँ एक टूटा हुआ स्टूल भी न था। सरला विपिन के पास बिछौने पर बैठी थी। यह देखकर वह उठ खड़ी हुई।

राजेन्द्र और ज्ञानेन्द्र उसी बिस्तरे पर बैठ गये। ज्ञानेन्द्र

ने कहा, "एकाएक ज्वर क्यों हो गया? कल हमारे साथ घूमने गया था, कहीं इसी से तो ज्वर नहीं हुआ।"

राजेन्द्र—"हो सकता है। मालूम होता है, ठंड लग गई। इसी भय से मैं कभी इसे अपने साथ नहीं ले जाता।"

विपिन खूब रो रहा था। सरला उसे गोद में लेकर फ़र्श पर बैठ गई।

ज्ञानेन्द्र ने कहा, "तब तो भाभी के सामने मुझे खड़ा भी नहीं होना चाहिए। मैं ही तो उसे ले गया था। इसलिए दोषी मै ही ठहरा।"

सरला विपिन के रेशम-जैसे बालो पर हाथ फेरते-फेरते बोली "नहीं, नहीं। ऐसा क्यों सोचूँगी?"

राजेन्द्र—परन्तु घबराने की क्या बात है? अभी डाक्टर आकर देखेंगे। दो-एक दिन में ठीक हो जायगा।

नौकर ने आकर कहा, "आप लोगों के लिए चाय रख आया हूँ। ज्ञानेन्द्र यह सुनकर चला गया। तब राजेन्द्र ने कहा, "अब विपिन को बिछौने पर सुला दो।"

"हाँ, सुला दूँगी।"

"दूँगी क्या? सुला दो। गोद में लेकर कब तक बैठोगी?"

सरला ने विपिन को पलँग पर लिटा दिया और उसे देखकर बोली, "आह! एक ही दिन के ज्वर में कैसा निढाल हो गया है!"

राजेन्द्र ज़रा हँसकर बोला, "हूँ ! अब पता चलेगा ! जब प्रकाश के साथ भेजने को कहा था तब तो सुना नहीं। इस समय पराये लड़के को लेकर.... ..।"

सरला के नेत्र लाल हो गये। वह ज़रा रुककर बोली, "बहन का लड़का क्या पराया होता है ?"

राजेन्द्र—"लड़का मेरी बहन का है। मै तुम्हारी बात कह रहा हूँ।"

सरला ने चौंककर कहा, "मेरी बात !" उसके मुँह पर घोर अविश्वास का भाव झलकने लगा।

राजेन्द्र अप्रतिभ होकर सरला का मुँह देखने लगा। उसे एक दृष्टि से अपनी ओर देखते देखकर लज्जा से कुंठित होकर सरला बोली, "तुम्हारी चाय ठडी हो रही है न ?"

राजेन्द्र हँसकर बोला, "चाय ठंडी हो रही है तो होने दो। तुम्हें तो मैंने गर्म कर दिया। क्या यह अच्छा काम नहीं है !"

सरला ने उत्तर दिया, "यद्यपि मै तनिक भी गर्म नहीं हूँ तथापि होने पर भी कुछ अन्याय न होता। इससे किसी की ज़रा भी हानि नहीं हो सकती।"

राजेन्द्र—यह बात नहीं है। अच्छा, रहने दो।

सरला—तुम्हारी चाय फिर पीने योग्य न रहेगी।

राजेन्द्र—(हँसकर) ज़बरदस्ती भेजती हो। अच्छा, जाता हूँ।

विपिन के माथे पर हाथ फेरकर और उसे चुम्बन करके राजेन्द्र चला गया।

ज्ञानेन्द्र ने उसे देखते ही हँसकर कहा, "क्यो राजेन्द्र? आशा करता हूँ कि.... .।"

"चुप-चुप। बहुत हुआ। और अधिक कुछ न कहो।"

"और यदि इसके विपरीत कुछ कहूँ तो क्या तुम्हें कुछ आपत्ति होगी?"

"निश्चय। वह बिलकुल मिथ्या होगी।"

"क्यों?"

"ठहरो भाई। पहले ज़रा चाय पी लेने दो।"—कहकर राजेन्द्र ने प्याला मुँह से लगाया।

ज्ञानेन्द्र चाय पीकर घूमने चला गया।

सत्रहवाँ परिच्छेद

पिन का ज्वर एक सप्ताह तक खूब बढ़कर क्रमशः घटने लगा था ; परन्तु बिलकुल उतरा नहीं था। सरला मन ही मन व्याकुल हो रही थी। परन्तु ससुर का शरीर अच्छा नहीं है, यह सोचकर कुछ कह नहीं सकती थी।

यह विपिन ही एकमात्र उसकी सान्त्वना और आधार है। विपिन के न रहने पर वह इस सूने उजाड़ घर मे किस प्रकार रहेगी, यह सोचते ही उसे रोमांच हो आता है ! सास के साथ ही साथ क्या उसे विपिन को भी खोना पड़ेगा ! उसकी आँखो से आँसू बहने लगे।

बिछौने पर बैठा हुआ विपिन खेल रहा था। उसका रंग सफेद पड़ गया था। हाथ-पाँव सूखकर काँटा हो गये थे। केवल मुख की हँसी ही नहीं सूखी थी। और शरीर मे शक्ति न होने पर भी उसके मन में दौड़ने और भागने की इच्छा प्रबल थी।

सरला ने घर में आते ही विपिन को हृदय से लगाकर उसके मुख का चुम्बन किया। मामी से अकस्मात् यह आदर पाकर विपिन ने विस्मित होकर कहा, "क्या है मामी?"

सरला ने उसके मुँह और सिर पर हाथ फेरकर कहा, "कुछ नहीं बेटा। ऐसे ही तुम्हे प्यार किया था।"

"ओ"—कहकर विपिन फिर खेलने लगा। स्नेहमुग्ध नेत्रों से सरला उसका खेल देखने लगी। बलदेव ने आकर कहा, "बाबूजी बुलाते हैं।"

सरला उठकर चली गई।

जगदीश बाबू घूमकर लौटने के बाद उसी पोशाक में बैठे हुए कागज-पत्र देख रहे थे। कई दिन से वह देश लौट चलने की बात सोच रहे थे। काम-काज छोड़कर विश्राम करना उन्हे अच्छा नहीं लगता था। वह केवल विपिन के अच्छे होने की राह देख रहे थे।

देश से दीवानजी की चिट्ठी आई है। उसमे लिखा है कि ज़मींदारी के काम में कुछ गड़बड़ हो रही है। मालिकों मे से किसी एक के वहाँ रहे बिना ठीक प्रबन्ध नहीं हो सकता। पुराने दीवानजी के देहान्त के बाद यह नये दीवान नियुक्त हुए थे। नये आदमी के ऊपर ज़मींदारी का सब कारोबार छोड़ देना बुद्धिमानी नहीं है।

सरला को देखकर जगदीश बाबू ने कहा, "देखो बहू, दीवान जी की चिट्ठी पढ़कर देखो। अब तो यहाँ ठहरने से काम न चलेगा। बताओ क्या किया जाय।"

चिट्ठी पढ़कर सरला क्या उत्तर दे, वह कुछ सोच न सकी। फिर भी जरा सोचकर बोली, "विपिन के लिए ही तो मुझे चिन्ता है। नहीं तो सभी लोग साथ चले चलते।"

"तब फिर मैं पहले चला जाऊँ? विपिन के अच्छे हो जाने पर राजेन्द्र तुम सब लोगों को ले आवेगा।"

"परन्तु आपका स्वास्थ्य तो अभी तक अच्छा नहीं हुआ है। परिचर्या मे कुछ त्रुटि होने पर फिर रोग लौट पड़ेगा। नहीं, आप अभी न जाइए।"

"न जाने से काम कैसे चलेगा? तुमने चिट्ठी तो पढकर देख लिया है न? शीघ्र ही लगान देना है। यदि 'कर' अभी वसूल न हुआ तो फिर अदा करना कठिन हो जायगा। तुम तो सब अच्छी तरह समझती हो। जरा सोचकर देखो।"

सरला चुप हो गई।

जगदीश बाबू कुछ सोचकर बोले, "हाँ, राजेन्द्र को भी भेज सकता हूँ; परन्तु वह वहाँ जाकर कुछ न कर सकेगा। वह अभी तक इन सब बातों को कुछ भी नहीं समझता। मेरे जाये बिना काम न चलेगा।"

सरला ने खिन्न होकर कहा, "बहुत कुछ औषध पथ्य

द्वारा आपका शरीर तनिक अच्छा हुआ था। कहीं फिर खराब न हो जाय, यही भय है।"

"नहीं, तुम इसकी चिन्ता न करो। मै इसका विशेष प्रबन्ध रक्खूँगा।"

"तो फिर कब जाने का विचार है ?"

"आज ही दूसरी ट्रेन से जाने को सोच रहा हूँ। मै समझता हूँ, वहाँ का सब कार्य दो सप्ताह के भीतर ही समाप्त हो जायगा। उस समय तक यदि तुम लोग न लौट सकोगे तो मै फिर यहीं आ जाऊँगा।"

"साथ में बलदेव ही जायगा ?"

"हाँ ! वहाँ तो आदमियों की कमी नहीं है।"

उसी दिन बलदेव को साथ लेकर जगदीश बाबू चले गये।

राजेन्द्र और ज्ञानेन्द्र जगदीश बाबू को मोटर-स्टेशन तक पहुँचाने गये थे। जिस रास्ते से वह आ रहे थे, उससे राजेन्द्र पहले कभी नहीं आया था। इसी से वह चारों ओर दृष्टि दौड़ाता हुआ चल रहा था।

सड़क के किनारे एक छोटे परन्तु सुन्दर स्वच्छ बँगले के लम्बे बरामदे में बीस-इक्कीस वर्ष की एक युवती पाँच-छः मास के बालक को गोद में लिये टहल रही थी। छोटे बच्चे का रोना किसी प्रकार न रोक सकने के कारण माँ का मुख भी रुआसा हो गया था। इसी समय पीछे से कोट-पेंटधारी एक

सुन्दर युवक ने आकर बच्चे को उसकी माँ की गोद से उठाकर युवती को चकित कर दिया। मुँह फेर कर युवती ने युवक को देखते ही हँसकर सिर नीचा कर लिया।

ज्ञानेन्द्र ने राजेन्द्र को एक धक्का देकर कहा, "क्यों राजन, क्या देख रहे हो?"

राजेन्द्र—यह देख रहा हूँ कि यह लोग कौन हैं। क्या तुम पहचानते हो?

ज्ञानेन्द्र—वह पुरुष यहाँ के डिप्टीमैजिस्ट्रेट रमेश बाबू है और वह स्त्री 'लावण्य' है। जानते हो कौन लावण्य? वही लावण्य जिसका जोड़ तुम इस जगत् मे खोजकर भी नहीं पाते! वही लावण्य इस समय रमेश बाबू की स्त्री है।

राजेन्द्र का मुख लज्जा से लाल हो गया। वह बोला, "अरे क्या बक रहे हो? चुप भी रहो।"

ज्ञानेन्द्र हँसते हुए राजेन्द्र के मुख पर एक तीव्र दृष्टि डालकर बोला, "हूँ, बक रहा हूँ। मुँह से साफ़-साफ़ कह देना शायद बुरी बात है और मन मे हर समय सोचना अच्छा है। क्यो?"

बातचीत करते-करते यह लोग उस बँगले से दूर चले गये थे। इन्होंने लावण्य को देखा था; परन्तु वह इन्हे न देख सकी थी; नहीं तो 'ज्ञान दादा' कहकर अवश्य पुकारती।

ज्ञानेन्द्र यही सोच रहा था और राजेन्द्र चुपचाप चला जा रहा था।

ज्ञानेन्द्र ने हँसकर कहा, "क्या हुआ, भाई साहब? तुम्हें क्या एक घाव और लगा?"

राजेन्द्र ने ज़रा मुँह ऊँचा करके कहा, "पागल हो गये हो क्या! व्यर्थ बातों मे समय नष्ट कर रहे हो। अब तुम लड़के के बाप बनकर मुझसे आयु में चालीस वर्ष बड़े हो गये हो। बैठकर हरि-भजन किया करो।"

"हरि-भजन" ज्ञानेन्द्र 'हो हो' करके हँस पड़ा। बोला, "राम का नाम कैसे लिया जाता है, सिखा दो ज़रा। 'राम-नाम सत्य है' इसी तरह से न?"

"रास्ते के लोग तुझे पागल न कहने लगें, ज्ञान?"

"किसे?"

"तुझे, और किसे? पागलपन कर रहे हो।"

"तब मैं उनसे कह दूँगा कि मैंने कुछ नहीं किया है। सारा अपराध इसी का है। इसी के सिर में कुछ गोलमाल है।"

राजेन्द्र हँसकर बोला, "वाह, क्या बात है! भगवान् इस कलि-काल के युधिष्ठिर को बचाये रखना।"

घर पहुँचकर उन्होंने शाम का जल-पान किया। जल-पान करके ज्ञानेन्द्र ने कहा, "मैं ज़रा घूमने जाता हूँ। मेरे

एक मित्र इंडियन क्लब मे आये हुए है। उनसे मिलना है।"

विपिन की दासी चमेली आकर बोली, "बहूजी कहती हैं, जरा ठहरकर जाइएगा। अभी भय्या को देखने डाक्टर साहब आते होंगे। उस समय किसी को घर पर रहना उचित है।"

राजेन्द्र की ओर देखकर ज्ञानेन्द्र ने कहा, "तुम तो घर पर ही रहोगे न ?"

"हाँ, मै अभी कहीं नहीं जाऊँगा।"

"तब मेरे रहने की तो कोई आवश्यकता नहीं है।" कहकर ज्ञानेन्द्र बाहर चला गया।

राजेन्द्र ने सरला के कमरे मे जाकर देखा कि विपिन गहरी नींद में सो रहा है। कमरे के एक कोने में पीतल की धूपदानी रक्खी है। उससे मृदु सुगन्धि निकलकर सारे घर को सुगन्धिमय कर रही है। टेबुल पर लैम्प और विपिन की ओषधियों की शीशियाँ, मेजर ग्लास, थर्मामेटर, आधा टूटा हुआ अनार, यह सब वस्तुएँ रक्खी हुई है। इसके सिवा उस पर एक बन्द लिफाफ़ा भी रक्खा है। मालूम होता है, उसे डाक में भेजने का अवसर नहीं मिला।

राजेन्द्र ने लिफ़ाफ़ा हाथ में लेकर देखा। सुन्दर स्पष्ट अक्षरों में उर्मिला का पता लिखा है। अक्षर अंग्रेज़ी के हैं और किसी अशिक्षित मनुष्य के हाथ के से नहीं मालूम होते।

राजेन्द्र ने चिट्ठी रख दी और सोचने लगा कि क्या सरला अंग्रेजी भाषा भी जानती है। अक्षरों से तो यह अनुमान होता है कि उसे इस भाषा का अच्छा ज्ञान है।

सरला उस समय वहाँ न थी। किसी दूसरे कमरे मे कुछ काम कर रही थी।

राजेन्द्र ने पुकारा, "बलदेव, ओ बलदेव।"

सरला ने आकर कहा, "बलदेव तो बाबूजी के साथ गया है। यहाँ नहीं है।"

राजेन्द्र अप्रतिभ होकर बोला, "ओहो मुझे याद ही नहीं रहा था। तो क्या और कोई नौकर भी यहाँ नहीं है? अच्छा, तुम वहाँ क्या कर रही थीं?"

"क्यो क्या कुछ काम है?"

"हाँ। नहीं, अच्छा रहने दो।" कहकर उसने बरामदे से एक चेयर आप ही उठाकर सरला के कमरे में ले जाकर रख दी।

सरला सोचने लगी कि उसके कमरे मे चेयर रखने का ऐसा क्या प्रयोजन है जो उन्होंने स्वयं ही ले जाकर रक्खी है। यह दया कमरे पर है या उस पर, उसकी समझ में न आया।

अपनी बात सोचते ही उसका मन फिर बिगड़ने लगा। उसको तो वही लांछना गंजना निर्यातन बिना दोष के अप-

मान का बोझ ढोते-ढोते और आँखो से आँसू बहाते-बहाते एक-दो, तीन नहीं, महीनो पर महीने और वर्षों पर वर्ष बीत चुके हैं। उसकी दशा को सुनकर तो नितान्त पराये लोग भी आह कर उठते है। अब और उसके ऊपर दया करने को क्या बाकी है?

उस समय का कार्य समाप्त करके थोड़ी देर बाद सरला ने अपने कमरे मे जाकर शीशे से देखा कि एक भारी ओवर-कोट पहनकर मृदु मधुर स्वर से गाते हुए स्वामी बग़ीचे में टहल रहे है। चन्द्रमा की शुभ्र ज्योत्स्ना में बग़ीचा खूब साफ़ दिखाई देता था। सड़क पर गढवाली कुली सम-स्वर से पहाड़ी राग में हिन्दी गाना गाते चले जा रहे थे।

सीढ़ी चढ़ते-चढ़ते ज्ञानेन्द्र ने पूछा, "अरे तुम यहाँ ठंड में क्यों टहल रहे हो, राजेन्द्र? क्या डाक्टर अभी तक नहीं आये?"

राजेन्द्र ने टहलते-टहलते ही उत्तर दिया, "नहीं। अब आज कब आयेंगे?"

ज्ञानेन्द्र—"तब वह आज नहीं आयेंगे। तुम घर में आओ न? कब तक टहलते रहोगे? यहाँ बड़ी ठंड है।"

राजेन्द्र ने इसका कुछ उत्तर न देकर अपना टहलना जारी रक्खा।

अठारहवाँ परिच्छेद

ली खिड़की के सामने बैठकर सरला कई क़मीज़ों मे बटन लगा रही थी। काम समाप्त होते न होते अँधेरा हो गया। नीलाम्बरी साड़ी में तारकशी की बूँटी की भाँति आकाश में अनगिनती नक्षत्र चमकने लगे। लाचार होकर सरला को सुई-डोरा रख देना पड़ा।

विपिन अब अच्छा हो चला था। वह दूसरे कमरे में अपने नये छोकरे नौकर के साथ खेल रहा था। बीच-बीच में उसके खिलखिलाकर हँसने की ध्वनि आ जाती थी। नहीं तो सब सुनसान और अँधेरा था।

नौकर लैम्प जलाने आया था, परन्तु सरला ने कह दिया, "अभी ठहरो। थोड़ी देर में जलाना।" मानों उसे यह गहरा अन्धकार ही अच्छा लगता हो!

दीवार से सिर टेककर सरला अपने निराश प्राणों के भाव में डूबी हुई बैठी थी।

राजेन्द्र निःशब्द दरवाज़े के पास आकर खड़ा हो गया।

वह अँधेरे के कारण कमरे में एकबारगी प्रवेश न कर सका। बोला, "यहाँ इतना अन्धकार क्यों है?"

सरला चौंककर उठ बैठी और बोली, "क्या कुछ चाहिए? बरामदे मे आऊँ?"

"नहीं नहीं, मुझे कुछ नहीं चाहिए। तुम्हे बाहर आने की कुछ आवश्यकता नहीं है। तुम्हारे कमरे में रोशनी नहीं है, इसी से पूछ रहा था। सब नौकर-चाकर कहाँ मर गये हैं?"

"नौकरों का कोई दोष नहीं है। मैने अपनी इच्छा से ही मना कर दिया था।"

"क्यों?"

"यों ही। मुझे अन्धकार अच्छा लगता है। क्या तुम्हारे लिए लैम्प जला दूँ?"

"मेरे लिए? नहीं रहने दो।"

"भवाली से तो रात को दस बजे लौटने की बात थी। फिर अभी से कैसे लौट आये?"

"मै इतनी दूर नहीं जा सका। रास्ते से ही लौट आया। इसी से जल्दी आ गया हूँ।"

सरला बरामदे में आकर खड़ी हो गई थी। नौकर ने आकर लैम्प जला दिया। लैम्प जलते ही राजेन्द्र कमरे में आकर चेयर पर बैठ गया। क्षण भर ठहरकर उसने कहा, "परन्तु तुमने मेरे शीघ्र लौटने का कारण तो नहीं पूछा?"

सरला जरा हँसकर बोली, "हाँ बताओ। क्यों लौट आये ?" परन्तु उसके स्वर में आग्रह न था।

राजेन्द्र ने उत्तर दिया, "बाबूजी भी तो घर पर नहीं है। तुम्हें अकेला छोड़कर इतनी दूर जाना क्या....?"

सरला बात काटकर बोली, "इतनी देर से कुछ हानि न हो सकती थी।"

"परन्तु सम्भव हो सकता है, बाबूजी इतनी बात के लिए ही क्रोध करते। व्यर्थ डाँट खानी पड़ती। ठीक है न ? क्या मैने वापस आकर अच्छा नहीं किया ?"

"बहुत अच्छा किया।" कहकर सरला जाने लगी।

राजेन्द्र जूता खोलते-खोलते बोला, "यह क्या ? जाती क्यों हो ? ठहरो, सुनो।"

"कहो सुनती हूँ।"

"इतनी दूर से नहीं। यहाँ पास आओ।" सरला ने माथा ऊँचा करके तीव्र स्वर से कहा, "क्या ? क्या कहा तुमने ?"

राजेन्द्र ने अप्रतिभ होकर अपना बात पूरी करने के लिए कहा, "यह देखो।"

सरला ने देखा कि स्वामी के अँगूठे का नाखून उखड़ गया है और उसमें से इतना रक्त निकल रहा है कि सारा मोजा लथपथ हो गया है।

सरला सहमकर बोली, "अरे राम ! यह क्या हुआ ?"

"एक भारी पत्थर उठाकर अपनी शक्ति की परीक्षा कर रहा था कि पत्थर हाथ से छूटकर पाँव पर गिर पड़ा। उसी से यह दशा दिखाई पड़ती है।"

"इसी समय भीगा कपड़ा न बाँधने से ज़ख्म पक जायगा।"

राजेन्द्र यह सुनकर मुस्करा दिया। सरला ने एक साफ कपड़ा और पानी लाकर राजेन्द्र के सामने रख दिया।

"इतना रास्ता इसी लँगड़े पाँव से चलकर आया हूँ। अब इस गीले कपड़े से क्या होगा ?"

"दर्द कम हो जायगा।"

"आप ही अच्छा हो जायगा।"

सरला चुप हो गई। उसका चुपचाप रहना राजेन्द्र को बिलकुल पसन्द न था। वह विरक्त होकर उठ खड़ा हुआ और कहने लगा, "घर में चुप होकर मुझसे नहीं बैठा जाता। घूमने जाता हूँ।"

सरला की जीभ पर उत्तर आया कि फिर आये ही क्यों थे परन्तु फिर कुछ सोचकर मुस्कराकर बोली, "पाँव में तो दर्द हो रहा है। चलोगे कैसे ?"

राजेन्द्र फिर चेयर पर बैठकर बोला, "हाँ, यह भी तो ठीक है।"

इसी समय विपिन का रोना सुनकर सरला ने जल्दी से जाकर देखा कि वह चौखट से पाँव अटक जाने के कारण गिर पड़ा है और रो रहा है।

सरला उसे गोद में उठा लाई परन्तु स्वामी के सामने अंटसंट बककर उसे चुपा न सकी। वह रोता ही रहा।

राजेन्द्र ने विरक्त होकर उसे धमकाकर कहा, 'चुप रह पाजी। इतना चिल्ला क्यों रहा है?"

भयभीत होकर विपिन ने सरला के कन्धे पर अपना मुँह छिपा लिया और चुप हो गया।

राजेन्द्र बोला, "तुमने इसे इतना सिर चढ़ा रक्खा है। आगे चलकर क्या होगा?"

"होगा क्या? कुछ दिन बाद ही अपने बाप के घर चला जायगा। वहाँ सौतेली माँ से आदर पाना कठिन होगा।"

राजेन्द्र ने हँसकर कहा, "बाप के पास कैसे जायगा? तुम क्या उसे छोड़ सकोगी? उसी के कारण तो तुम हरिद्वार भी नहीं जा सकीं।"

"मेरी बात रहने दो। उसी की बात करो न?"

"परन्तु तुम्हारी ही बात क्यों रहने दूँ?"

"मेरी बात मे विचार करने के लिए कुछ भी नहीं है और उसकी कुछ जरूरत भी तो नहीं है।"

तेज में आकर दर्पपूर्वक बात कहने की चेष्टा करने पर भी

सरला के आहत कंठ से वेदना का स्वर बज ही उठा। उसने लज्जित होकर बात बदलने की इच्छा से कहा, "ज्ञान बाबू कब तक आवेंगे ?"

"रात के दस बजे तक।"—कहकर राजेन्द्र उठ गया। उसके भी हँसी से भरे मुख पर वेदना और चिन्ता की छाया झलकने लगी।

जिस दिन जगदीश बाबू फिर नैनीताल आये, ज्ञानेन्द्र भी उसके अगले दिन बनारस चला गया। जाते समय उसने राजेन्द्र से कहा, "यहाँ पर यह कई दिन खूब अच्छी तरह कट गये।"

राजेन्द्र ने हँसकर उत्तर दिया, "और तुम्हारे दिन बुरी तरह से ही कहाँ पर बीतते है ?"

ज्ञानेन्द्र—पर मैं समझता हूँ तुम्हारे भी बुरे नहीं कटे। कुछ परिवर्तन अवश्य दिखाई पड़ता है।

राजेन्द्र चौंककर बोला, "पागल हो। मुझमे तुमने क्या परिवर्तन देखा ? मै क्या रंग हूँ ?"

"ना भाई, ऐसे मनोहर स्थान पर आकर भी तुम्हारे हृदय में कुछ रस नहीं आता ?"

"चूल्हे में गया तुम्हारा रस। इस रस से तो मै हैरान हो गया।"

"यह तो तुम्हारी ही इच्छा है।"

"बस, बस, भाई चुप हो जाओ। बहुत हुआ। देखो, तुम्हारी मोटर चल दी।"—कहकर राजेन्द्र ने मोटर का द्वार छोड़ दिया।

मोटर चल दी। राजेन्द्र कुछ दूर मोटर के साथ चलकर ज्ञानेन्द्र को नमस्कार करके घर लौट आया।

जगदीश बाबू ने नैनीताल आकर देखा कि विपिन की देख-रेख से भी अधिक गृहस्थी का काम सरला को करना पड़ता है। सदैव उसके हाथ मे एक न एक काम लगा ही रहता है।

वेष-भूषा के सम्बन्ध मे भी सरला उदास ही रहती है; परन्तु इससे पहले वह वेष-भूषा में उदास रहते हुए भी कभी मैले वस्त्र न पहनती थी। अब उसने वह भी पहनने आरम्भ कर दिये है। उसे देखते ही आजकल यह प्रतीत होता था, ससार में जितनी दीनता व्यर्थता का केन्द्र है, वह सरला ही है।

वास्तव में आजकल साफ़ कपड़े पहनते ही उसे लज्जा आती है क्योंकि बहुत बचाने पर भी वह आजकल राजेन्द्र के सामने दिन मे दो-चार बार पड़ ही जाती है।

इस अवस्था मे यदि उसके स्वच्छ वस्त्रों और वेष-भूषा को देखकर स्वामी कुछ और सोचे तो उसके लिए वह लज्जा असहनीय हो जायगी।

स्वामी की बात का विद्रूप और व्यग्य उससे छिपा नहीं

था। उससे उसे बहुत भय होता था ; परन्तु श्वशुर की बात वह अमान्य न कर सकती थी। विशेष करके जब उनके जैसे गम्भीर आदमी की एक बात को ही बाक़ायदा हुक्म समझ कर सबको मानना पड़ता है।

इसी से जब जगदीश बाबू ने एक दिन कहा कि 'बेटी, तुम्हारे कपड़े बहुत मैले हो गये हैं। इन्हे बदल डालो। इतनी मैली रहना उचित नहीं है' तो बाध्य होकर उसे कपड़े बदलने ही पड़े।

परन्तु सरला यह बात राजेन्द्र से छिपा नहीं सकी। घर के भीतर से एक किताब हाथ में लिये राजेन्द्र इसी समय बाहर निकल रहा था। वह सरला को देखकर ठहर गया और मुग्धभाव से मुस्कराया। फिर हँसकर बोला, "मालूम होता है, इस घर में धोबी ने फिर से आना-जाना शुरू कर दिया है।"

सरला ने सिर नीचा कर लिया। विपिन पास ही खड़ा था। उसने सरला की ओर देखकर कहा, "हाँ, मामी ! आज तुम बहुत अच्छी लगती हो।"

वैसे ही राजेन्द्र ने भी हँसकर कहा, "यही तो मै भी देख रहा हूँ।"

सरला ने राजेन्द्र के सामने मुख करके कहा, "क्यों कैसा देख रहे हो तुम मुझे ?"

"ओहो ! नाराज़ हो गईं । इस ज़रा-सी बात पर ही ।"

लज्जा से सरला का मुख कान तक लाल हो गया । वह बोली, "नहीं नाराज़ क्यों हूँगी ? मैं जानती हूँ कि मुझे क्रोध नहीं आता । और क्रोध करूँगी ही किसके ऊपर ?"

"क्यों अभी जो क्रोध कर रही हो क्या नहीं समझतीं कि किसके ऊपर है ?"

"किसी पर भी नहीं ।"

"किया तो है कुछ थोड़ा-सा । अच्छा, मैं जाता हूँ ।" यह कहकर राजेन्द्र सीधा बाहर की ओर चला गया ।

उन्नीसवाँ परिच्छेद

र-पाँच महीने नैनीताल में बिताकर सब लोग देश लौट आये। उनके आने के कई दिन बाद विपिन के पिता तथा पितामही उसे फिर अपने घर ले जाने के लिए आये।

नानी के न होने पर सरला विपिन को भली प्रकार रख सकेगी, यह उसकी दादी को विश्वास न था।

विशेष करके आजकल बीमारी की वजह से विपिन का दुर्बल शरीर देखकर इन लोगों का यह विश्वास और भी दृढ हो गया था।

जब विपिन बिलकुल बच्चा था और उसके बचने की कोई आशा न थी, तब उसकी खोज-ख़बर लेने की किसी ने भी आवश्यकता न समझी। अब जब कि वह सयाना हो गया है, अतः अब उसके पिता तथा दादी की कर्तव्यबुद्धि जाग उठी। वह सोचने लगे, यह सुन्दर शिशु उन्हीं के घर का उजाला है। वह क्या सदा दूसरों के घर को ही अपना समझता रहेगा?

प्रकाश ने प्रेम दर्शाते हुए पुकारा, "बच्चा, ओ बच्चा, यहाँ तो आओ बेटा!"

विपिन ने अप्रसन्न मुख से कहा, "मेरा नाम बच्चा नहीं है।"

प्रकाश की माँ ने आदर करके उसे गोद मे लेना चाहा। यह देखकर विपिन चिल्ला पड़ा, "मामी! ओ मामी! जल्दी आओ।"

सरला ने मलिनमुख किये वहाँ आकर पूछा, "क्या हुआ भय्या?"

विपिन ने रोना मुँह बनाकर कहा, "यह मुझे पकड़ ले जायँगी।"

दादी ने कहा, "हाँ बेटा। ले क्यों नहीं जाऊँगी? मेरे लाल तुम्हीं तो मेरे वंशधर कुल-दीपक हो! तुम अपने घर क्यों नहीं चलोगे।"

वास्तव में उसकी दादी की यह बात ठीक ही थी क्योंकि प्रकाश की इस स्त्री के अभी तक दो कन्याएँ ही हुई थीं। पुत्र केवल विपिन ही था। इसीलिए वह और भी विपिन को अपने घर ले जाने को उत्सुक थीं।

विपिन ने ऊपर मुख करके दृढ़ता से कहा, "नहीं मैं तुम्हारे घर कभी नहीं जाऊँगा।"

वह विस्मित होकर अपनी दादी के प्यार करने की रीति देखने लगा। सरला उन लोगों के भोजन इत्यादि का प्रबन्ध

करने चली गई। उसके जाते ही विपिन चिल्लाने लगा, "मामी। मेरी मामी कहाँ चली गईं?"

दादी ने उसे चुमकारकर कहा' "अपनी मामी को जाने दो बेटा। मै तुम्हे तुम्हारी माँ के पास ले चलूँगी।"

विपिन ने चारों ओर देखकर कहा, "माँ कहाँ है? माँ तो बनारस गईं। माँ नहीं हैं।"

सबको माँ कहते देखकर विपिन भी अन्नपूर्णा को माँ ही कहता था।

सरला ने आकर देखा कि बाजार की मिठाइयों और नमकीन से विपिन के दोनों हाथ भर रहे है। वह घबराकर बोली, "अरे नहीं-नहीं। विपिन यह सब चीजें नहीं खाता। अभी बीमारी से उठा है न? यह सब चीजें खाने से उसकी तबियत फिर खराब हो जायगी।"

सरला को देखते ही विपिन ने भय से हाथ की सब चीजें भूमि पर फेंक दीं। यह देखकर उसकी दादी का मुख अप्रसन्न हो गया।

× × ×

प्रकाश और उनकी माँ राजेन्द्र को साथ लेकर जगदीश बाबू के पास विपिन को ले जाने की आज्ञा माँगने गये। सरला भी उस समय वहीं पर बैठी हुई श्वशुर के लिए सैनेटोजन तय्यार कर रही थी।

प्रकाश की माँ की बात के उत्तर में जगदीश बाबू ने कहा, "मुझे तो कुछ भी आपत्ति नहीं है। हाँ, यदि बहू को कुछ कहना हो तो दूसरी बात है।"

सरला का मन कृतज्ञता से भर गया। यही तो उसकी परीक्षा का अवसर है। विपिन को एकदम अपने से अलग कर देना उसके पक्ष मे कितना बड़ा आत्मत्याग करना है, इसे केवल अन्तर्यामी भगवान् ही जानते हैं। परन्तु विपिन यदि सत्य ही अपने पिता तथा दादी का यथार्थ प्रेम और आदर पाता हो तो उसे बलपूर्वक रोक रखने का इसे क्या अधिकार है? इस पर भी बहुत चेष्टा करने पर भी उसके मुख से 'हाँ' नहीं निकल सका।

प्रकाश की माँ ने विरक्त होकर राजेन्द्र की ओर देखा। यह देखते ही सरला का मन चैतन्य हो गया। इसी स्थान पर तो उसकी पराजय निश्चित ही है। सब कुछ समझते-बूझते हुए भी उसके स्वामी उसके पक्ष में कुछ न कहेंगे, वरन् विपक्ष में ही बोलेंगे—यह उसे अच्छी तरह मालूम था। इस संकट से छुटकारा पाने के लिए उसने अपने हृदय के हाहाकार करते हुए रुदन को बलपूर्वक रोक कर भरे हुए गले से कहा, "अच्छा-अच्छा आप लोग उसे ले जायँ। मुझे कुछ आपत्ति नहीं है।"

सरला के गले के स्वर और बात से राजेन्द्र को बहुत

आश्चर्य हुआ। उसने सरला की ओर देखा। वह घुटनों में मुख छिपा कर फूट-फूट कर रो रही थी। जब तक प्रकाश और उनकी माँ विपिन को लेकर घर से चले नहीं गये, उसने सिर ऊपर नहीं उठाया।

घंटों तक विपिन के जाते समय की रुलाई की ध्वनि उसके कानों मे गूँजती रही। वह जाकर अपने कमरे में लेट गई और सारे दिन मुख लपेटे लेटी रही। उसके मन में होता था कि जैसे आज उसके लिए घर मे कुछ काम ही नहीं है। सब समाप्त हो गया।

दासी ने आकर पुकारा "बहूरानी।"

उसके पुकारने से सरला चौंक उठी। पूछा,—"क्या चाहिए?"

"भंडारघर की चाबी।"

आँचल से चाबी खोलते-खोलते सरला उठ बैठी। इतनी देर बाद उसे स्मरण हुआ नानाजी ने उसे कितनी ही बार उपदेश दिया था कि अत्यन्त शोक या अत्यन्त हर्ष में भी कभी ज्ञानशून्य होकर चैतन्यता न खोनी चाहिए। उसने दासी से पूछा, "इस समय चाबी लेकर क्या करोगी?"

"बड़े बाबू ने चाय बनाने को कहा है। चाय का डिब्बा, दूध और चीनी निकालना है।"

दासी चाबी लेकर चली गई। उसी समय नौकर ने आकर कहा, "धोबी कपड़े लाया है मिला लीजिए।"

"चलो मैं आकर देखती हूँ"—यह कहकर सरला हाथ-मुँह धोकर दालान में आई और धोबी के लाये हुए कपड़े मिलाकर सबके कपड़े छाँट कर यथास्थान रखने लगी। जगदीश बाबू के कपड़े लेकर वह उनके कमरे में गई और अल्मारी खोल कर कपड़े रखने लगी।

जगदीश बाबू बोले, "अब इस बार छोटी बहू को बुलाना चाहिए। क्यों बहू तुम्हें अकेले में बहुत कष्ट होगा ?"

सरला ने कहा, "अभी तो उर्मिला को गये थोड़े ही दिन हुए हैं। क्या इतनी जल्दी बुलाइयेगा ?"

"इससे क्या हुआ ? वह तो फिर भी कई बार मायके हो आई है। तुम तो एक बार भी नहीं गई।"

"इस बार मैं भी जाऊँगी, बाबूजी।"

"हाँ, हाँ। जाओगी क्यों नहीं। बड़ी प्रसन्नता से जा सकती हो। परन्तु राजेन्द्र तो तुम्हें पहुँचा देने को राजी नहीं होता। यदि पंडितजी आकर लिवा ले जायँ तो ठीक होगा।"

उसी दिन सबेरे सरला को उसकी माँ की चिट्ठी मिली थी। उसने श्वशुर से जाने की आज्ञा लेकर उसका उत्तर लिख दिया और यह भी लिख दिया कि यदि नानाजी इस बार उसे लेने आवेंगे तो यहाँ किसी को उसे भेजने मे कुछ आपत्ति न होगी।

तीन-चार दिन बाद ही उसका उत्तर आ गया कि पाँच-छः दिन के अन्दर लालाजी उसे लेने आवेंगे।

चिट्ठी को हाथ में लेकर सरला को विपिन की याद हो आई। न जाने उसे वहाँ वह लोग किस प्रकार रखते होंगे। अच्छा है या नहीं? अभी तक वहाँ से कोई चिट्ठी भी नहीं आई।

इस घर में आने के बाद से सरला उस एक ही भाव से रहती आती है। केवल सास के अभाव से दासी और नौकरों के ऊपर प्रभुत्व करने का कर्तव्य अवश्य उस पर अधिक हो गया है।

वह लोग बात-बात में अपनी शिकायतें मालिक तक नहीं पहुँचा सकते थे। इसी लिए उन लोगों की नालिश-फ़रियाद सरला ही को सुननी पड़ती थी।

एक दासी को सात-आठ दिन से ज्वर आ रहा था। इसी से वह काम पर नहीं आ रही थी। उसकी जगह पर एक नई दासी नियुक्त हुई थी।

एक सात-आठ वर्ष की बालिका का हाथ पकड़कर वह नई दासी अन्दर जा रही थी।

एक दूसरी दासी ने उसे पुकारकर पूछा, "अरी आ जमुना, सरजू को कहाँ लिये जा रही है?"

जमुना ने धीमी आवाज़ से कहा, "ऊपर बहूरानी के पास।"

"क्यों ?"

"उसकी माँ बहुत बीमार है। कुछ सहायता के लिए उसे लिये जा रही हूँ।"

"फूटे भाग्य ! तो बहूरानी के पास क्या मिलेगा ?"

दासी ने धीरे से कहा, "जब से यहाँ आई हैं, मैने उन्हें कभी दो पैसे का पोस्टकार्ड तक खरीदते नहीं देखा। वह क्या दान करेंगी ?"

जमुना धीरे-धीरे थोड़ी देर और कुछ बातचीत करके बालिका को लेकर अन्दर सरला के पास चली गई।

बालिका का सूखा हुआ मलीन मुख और दीन वेश देखकर सरला को बहुत दुख हुआ; परन्तु वह उसकी कुछ सहायता नहीं कर सकी। वह उसे क्या दे सकती है, सत्य ही उसके पास अपना क्या है ? बालिका की दुर्दशा देखकर उसे चाहे कितना ही कष्ट क्यों न हो; परन्तु वह उसे एक पैसा देकर भी उसका कुछ उपकार नहीं कर सकती। विवशता से सरला की आँखों में जल भर आया।

बालिका ने पहले हाथ फैलाकर रुपया माँगा, फिर आठ आना, चवन्नी, दुअन्नी, अन्त में हताश होकर कुछ भी देने की प्रार्थना करके रोने लगी।

सरला रुआँसे मुख से बोली, "मैं कुछ भी नहीं दे सकती। तुम जाकर बड़े बाबू से माँगो। वह अवश्य तुम्हे कुछ देंगे।"

बालिका ने दीन स्वर से कहा, "मुझे यदि आप कुछ देना चाहे तो आप ही दे दें।"

सरला बड़ी कठिनाई में पड़ गई। उसके पास कुछ नहीं है, इस बात पर यह लोग विश्वास नहीं करना चाहते।

रोने-धोने पर भी जब उस बालिका को कुछ नहीं मिला तो जमुना उसे लौटा ले चली। रास्ते में जाते-जाते बोली, "ओफ ओ! यह स्त्री कैसी कठोर-हृदय है, बाबा रे!"

दूसरे ही क्षण उसने लौटकर कहा, "बहूरानी, यदि अपनी पुरानी एकआध धोती ही उसे दे दो तब भी बड़ा उपकार हो। कहो तो पुरानी एक धोती उसे दे दूं।"

सरला ने व्यस्त होकर कहा, "नहीं, नहीं। उसे वह धोती मत दो। वह बहुत ही फटी है। उसके किसी काम में न आ सकेगी। वह उसे लेकर क्या करेगी?"

दासी बोली, "दे दीजिए। न होगा रात को ओढ़ ही लिया करेगी।"

"नहीं, नहीं वह देने योग्य नहीं है। मत दो।"

जो वस्तु किसी काम की नहीं है, उसे देने की सरला की इच्छा नहीं थी।

निराश होकर दासी ने कहा, "तब क्या इसे छोटे बाबू के पास ले जाऊँ? सम्भव है, दया करके वही कुछ दे दे। इसकी माँ की जैसी दुर्दशा देखकर आई हूँ, उससे बड़ा दुख

हो रहा है। टूटे घर में चारों ओर से शीत घुसी आती है। खाने को एक मुट्ठी अन्न नहीं, पीने को एक फूटा लोटा तक नहीं है। बहूरानी, आप लोग भाग्यवान् आदमी है। बिना देखे उसकी बात का विश्वास नहीं कर सकेगी। देखकर दया हुए बिना न रहती। तो फिर क्या इसे छोटे बाबू के पास ले जाऊँ?"

सरला ने सोचा कि वह कुछ देंगे तो नहीं, परन्तु जब वह उनके पास जाना चाहती है तो मै उसमें बाधा क्यो दूँ। बोली, "हाँ, वहाँ ले जा सकती हो।"

सरला मन ही मन चिन्ता करने लगी कि स्वामी कहीं यह न सोचे कि मैने ही इसे उनके पास भेजा है। उसे भय होने लगा कि वह कहीं बालिका को धमकाकर लौटा न दें।

बाहरवाले बरामदे में ईज़ी चेयर पर बैठा राजेन्द्र अख़बार पढ़ रहा था। इन लोगो को देखकर उसने पूछा, "क्या चाहती हो?"

बालिका ने भूमि पर माथा टेककर उसे प्रणाम किया। जमुना ने बालिका की विपत्ति की बात सुनाकर कुछ भिक्षा चाही।

राजेन्द्र ने कहा, "परन्तु मै तो कभी भिक्षा-विक्षा नहीं देता। तुम इसे अन्दर ले जाओ।"

जमुना बोली, "बहूरानी ने इसे आपके पास ही भेजा है। सरकार, इसकी माँ ने आपके यहाँ बहुत दिन तक काम किया है। अब मरने को पड़ी है। आपको उसकी····।"

राजेन्द्र अखबार रखकर अन्दर गया और उसने एक रुपया लाकर बालिका के हाथ में रख दिया। रुपया पाकर बालिका प्रसन्न हो गई। दासी आशीर्वाद देती-देती चली गई। राजेन्द्र फिर अखबार देखने लगा।

जमुना के मुख से यह बात सुनकर सरला को बहुत सन्तोष हुआ। बालिका के लिये उसके मन में वास्तव में बहुत दुख हुआ था। उससे भी उसे कुछ शान्ति मिली और इसके लिए मन ही मन उसने राजेन्द्र को धन्यवाद दिया।

बीसवाँ परिच्छेद

ज सरला के नानाजी उसे लिवाने के लिए आये है। वह स्नान और सन्ध्या किये बिना जल तक न ग्रहण करते थे, सरला यह जानती थी। जब वह वहाँ रहती थी, सबेरे उठकर उनके साथ फूल चुनती, स्तव पाठ करती, तथा पूजा का स्थान धो-लीपकर स्वच्छ रखती, चन्दन घिसती और पूजा के पात्र धोती-माँजती थी। यह सब काम वह अभी तक भूली नहीं थी।

प्रातःकाल उठकर उसने नानाजी की पूजा का सब साज-सामान ठीक कर दिया, सोने के जैसी चमकती हुई फूलदानी मे फूल सजाते-सजाते उसके मन में वही बचपन-जैसा आनन्द भर गया।

श्वशुर के उठने से पहले ही वह इन सब कामो को समाप्त कर देना चाहती थी और इसी लिए आज वह बहुत सबेरे उठी थी। तब तक घर के एक-आध नौकर को छोड़कर और कोई न उठा था।

देखकर कुछ समझ नहीं सकी। सिर नीचा करके वह फिर अपना काम करने लगी।

"तुम्हारा काम हो गया ?"

"बहुत कुछ। अभी बाबूजी सो रहे हैं। उठने पर उनको दवा इत्यादि देनी है। इसके सिवाय और भी कई दिन के प्रबन्ध के लिए थोड़ा-सा काम बाक़ी है।"

"तुम्हारे न रहने से तुम्हारा यह बाकी काम कौन करेगा ? और बाबूजी की ही सेवा-टहल कौन करेगा ? वह तो तुम्हारे सिवा किसी की बात भी नहीं सुनते।"

राजेन्द्र का हँसता हुआ प्रफुल्ल मुख विषाद की कालिमा से भर गया। यह देखकर सरला के स्नेहस्निग्ध नेत्र उज्ज्वल हो उठे। वह इस घर में कुछ नहीं चाहती। यहाँ तक कि किसी की श्रद्धा सहानुभूति तक नहीं चाहती। फिर भी उसके सूने प्राणों का ख़ाली पात्र खुला पड़ा है। दाँतों से ओठ दबाकर वह चुप रही। उत्तर देने के लिए उसके ओठ जलने लगे परन्तु वह बलपूर्वक उन्हे रोक रही थी।

राजेन्द्र तख़्त पर से उठ खड़ा हुआ और बोला, "सरला, सुनो।"

राजेन्द्र के अस्वाभाविक स्वर से सरला काँप उठी। उसने आज तक स्वामी के मुख से अपना नाम कभी नहीं सुना था। ज़रा आश्चर्य प्रकट करते हुए उसने कहा—बोलो।

"मेरी ओर मुख करो। कहता हूँ।"

सरला ने मुँह ऊपर किया और स्थिर दृष्टि से स्वामी की ओर देखकर वह बोली, "क्या कहोगे? फिर वही। वही बात न? उसे छोड़कर क्या तुम्हारे पास और कुछ बात नहीं है? मुझे व्यर्थ चोट पहुँचाने से तुम्हे क्या मिलता है? मैं तो अच्छी तरह समझती हूँ कि मै तुम लोगो के...."

"छिः! छिः! तुम क्या कह रही हो? ठहरो, मै और ही कुछ कहना चाहता था....।"

राजेन्द्र का स्वर भी स्वाभाविक न था। सरला का मुख लाल हो उठा था। वह बोली, "कहो, फिर क्या कहना है?"

"ना। अब नहीं कहूँगा। तुम बड़ी जल्दी नाराज़ हो जाती हो। इस समय तुम्हारा मन वह बात सुनने लायक़ नहीं रहा।"

सरला हँसकर बोली, "तब अब न कहोगे?"

"ना, कहा तो कि अब नहीं कह सकता। तुम आज के दिन तो और रहोगी न?"

"हाँ, जब तक उर्मिला नहीं आ पहुँचेगी तब तक हूँ। क्यों क्या तुम मुझे हरिद्वार जाने देना नहीं चाहते?"

"नहीं मैं क्यों मना करूँगा?"

उसी समय दुतल्ले पर से जगदीश बाबू ने पुकारा, "बल्देव, ओ बल्देव।"

राजेन्द्र तख्त पर से उठकर बाहर चला गया। सरला ने तिरछी गरदन करके देखा कि सवेरे के नवीन प्रकाश में पुष्प-पात्र के खिले हुए फूलों के ऊपर जैसे देवता की प्रसन्न हँसी फूट उठी है।

दालान की नीचेवाली सीढ़ी के नीचे रक्खे हुए गमलों में गुलाब की कलियों से भीनी-भीनी महक निकलकर झर-झर बहती हुई वायु में मिलकर सारे घर में सुगन्धि फैला रही थी।

सरला के विमुग्ध मन को उस दिन उसके नाम में अत्यन्त मधुरता प्रतीत हुई। उसका तुच्छ नाम इतना मीठा है, यह उसने अभी तक कभी अनुभव न किया था।

बहुत समय से उसने यह तुच्छ नाम किसी के मुख से नहीं सुना था। बनावटी नाम और बनावटी वेश में ही उसके यह दिन कटे हैं। यहाँ पर वह बहू है। वह यहाँ आकर अपने अस्तित्व तक को भूल गई थी। क्या जैसी वह यहाँ आई थी, आज भी वह वैसी ही है?

दो बजे की ट्रेन से उर्मिला आ पहुँची। कुछ देर बाद सरला जब गृह-कार्य के सम्बन्ध में उसे समझा रही थी तो उर्मिला ने भयभीत होकर कहा, "बाप रे। तुम्हारे न रहने से मै यहाँ अकेली कैसे रह सकूँगी?"

"खूब अच्छी तरह रह सकोगी। देखो, यह सब बाबूज

की दवाइयाँ हैं। सुनो, इस शीशी का यह सफ़ेद चूर्ण दोनों समय खाना खाने के बाद देना होगा। एक टेबुलस्पून भर चूर्ण पहले गर्म जल में घोल लिया करना। फिर दूध डालकर पतला करके पीने को देना।"

"यह सब मुझसे नहीं होगा भई। बल्देव ही बना दिया करेगा। कभी मै बनाने जाऊँ और बिगाड़ दूँ तो फिर क्या होगा? बाबूजी नाराज़ होंगे।"

"नहीं, यह नहीं हो सकता। तुम्हीं को देना होगा। तुम्हारे रहते हुए बल्देव यह काम नहीं कर सकता। भय क्या है? बिगड़ क्यों जायगा? मै भी तो रोज़ बनाती हूँ। कभी नहीं बिगड़ता, न कभी डाँट खाती हूँ। देखा है कभी तुमने?"

"तुम्हारे साथ मेरी तुलना नहीं हो सकती, भाभीजी। तुम्हारी बात ही दूसरी है। तुम मनुष्य थोड़े ही हो।"

सरला को हँसी आ गई। वह हँसते-हँसते बोली, "तो क्या मै भूत हूँ। मरने से पहले ही भूत बन गई हूँ।"

"भूत नहीं भाभीजी। तुम तो देवता हो।"

"यह तुम भूलती हो। मै देवता नहीं, उपदेवता हूँ। सिर से उतर जाने पर समझ सकोगी। भूत जब सिर पर रहता है जान नहीं पड़ता। उतर जाने पर ही लोग समझते हैं।"

"जाओ भी तुम न जाने क्या कह रही हो, जिसका

ठीक नहीं। तुम्हारी बात सुनकर रोऊँ या हँसूँ, समझ नहीं पड़ता।"

दोपहर को जब जगदीश बाबू भोजन करने बैठे उन्होंने सरला को बुलाकर कहा, "बेटी, तुम वहाँ बहुत दिन न लगाना। छोटी बहू तो अभी नासमझ है। तुम्हारे बहुत दिन यहाँ न रहने से तुम्हारी सब गृहस्थी नष्ट हो जायगी। मैं तुम्हे कितनी साध से अपने घर की लक्ष्मी बनाकर लाया था बेटी, परन्तु....।"

सरला ने जल्दी से बात काटकर कहा, "आप जब बुला भेजेंगे वह लोग तभी भेज देंगे, बाबूजी।"

जगदीश बाबू चिन्तित मन से चुप हो रहे। वह सोच रहे थे कि इस घर में जिसके चले जाने से मर्म-मर्म में चोट लगेगी उस घर से इसने क्या पाया है? केवल दुख, सन्ताप तब फिर वह जहाँ रहकर थोड़ी-सी शान्ति—सुख पा सके वहाँ उसे क्यो न रहने दिया जाय? उसे बलपूर्वक रोकना क्या निष्ठुरता नहीं है? उन्हीं का पुत्र होकर राजेन्द्र उन्हे इस प्रकार हरा सकता है, अपनी जिद्द के आगे वह इतना कर्तव्यहीन हो सकता है, यह उन्होने कभी नहीं सोचा था। हो सकता है इसमे उन्हीं का दोष है, परन्तु उसके क्या हृदय नहीं है? क्या उसे देखकर भी नहीं दिखाई पड़ता? घर में इतने दिन एक साथ रहकर भी घनिष्ठता नहीं हो सकी।

और, यह सब क्यो ? केवल रूप के लिए। ओह ! उनकी सन्तान होकर राजेन्द्र रूप का इतना भक्त क्यों हुआ ? वह अपने कार्य को अब भी अन्याय नहीं समझते थे परन्तु अब तो उन्हे कुछ उपदेश और आज्ञा देने का अधिकार नहीं रहा ; क्योकि उसने तो निर्विकार चित्त से केवल उनकी आज्ञा पालन की थी। अब वह क्या कह सकते थे ?

सरला ने कहा, "विपिन कैसा है, जब उसकी कुछ खबर मिले तो मुझे सूचना भिजवा दीजिएगा बाबूजी, नहीं तो मुझे बड़ी चिन्ता रहेगी।"

जगदीश बाबू बोले, "प्रकाश तो मेरे पास बहुत कम चिट्ठी-पत्री भेजता है। तब भी यदि उसकी चिट्ठी आई तो तुम्हे अवश्य खबर भेजूँगा।"

सरला ने शान्ति की साँस ली। विपिन का ज़िक्र चलते ही उसकी किलकारी और हँसी-खेल उसके नेत्रों में फिरने लगे।

जगदीश बाबू भोजन समाप्त करके उठ गये। सरला अपने कल्पना के चित्रपट पर मानसिक रंग भरकर हरिद्वारवास का स्वप्न देखने लगी। अहा ! वह ग़रीब ब्राह्मण की शान्तिमय कुटीर कितनी आडम्बरहीन है ! वहाँ रहने से कितनी ही भावनाओं से दूर रहेगी, यह क्या कम अच्छी बात है। इस ऐश्वर्य के खोल को छोड़ने के लिए उसका हृदय छटपटाने लगा। परन्तु साथ ही उसे स्मरण हुआ, क्या यह लोग

उसे वहाँ अधिक दिन रहने देंगे ? ओह ! उसे तो फिर भी यहीं लौट आना होगा !

यदि मै फिर यहाँ न लौटूँ तो क्या ही अच्छा हो। यहाँ आकर मैने जो हानि इस गृहस्थी की की है, वह भी मिट जायगी। सम्भव है, स्वामी अपनी इच्छानुसार किसी सुन्दरी स्त्री से विवाह करके सुखी हो जायँ।

परन्तु यदि वह चाहे तो अब भी तो दूसरा विवाह करने के लिए स्वतन्त्र है। मै तो उनके ऊपर अपना कुछ भी अधिकार नहीं जमाती। जमाना चाहती भी नहीं। परन्तु वह क्यों विवाह नहीं कर लेते और न करके मेरे साथ निर्लज्ज बातचीत तथा कठोर व्यंग्य करके मुझे शब्द-बाणों द्वारा बेध कर वह क्यो आजकल आनन्द उठाया करते हैं ?

क्या वह इन सब बातों का बदला उन्हें नहीं दे सकती ? अवश्य दे सकती है। परन्तु न मालूम क्यों वह यह सब अपमान नत होकर सहन कर लेती है ? विद्रोह की झुँझलाहट से उसके मन में आग जल उठती है तब भी वह उसे हँसी द्वारा क्यों रोक रखती है ? क्षण भर के लिए वह इसे अपने मन का ज्वारभाटा समझ लेती है, परन्तु न मालूम कौन-सा अज्ञात आशा उसे प्रत्युत्तर देने को रोक देती है ?

जिसे वह पाषाण निर्मम समझना चाहती है, वही विष

उसके अन्तर की भाप से मधु होकर झर पड़ता है और उसका समस्त हृदय मधुमय हो जाता है।

उसने सोचा था कि जब विपिन यहाँ नहीं है तो उसको यहाँ से चले जाने में कुछ बाधा नहीं है, परन्तु अब उसे जान पड़ता है कि उसका यह विचार एकदम सच नहीं है। ससार ने उसे भी अपने जाल में लपेटना आरम्भ कर लिया है।

बल्देव के साथ उसके नानाजी ने आकर कहा, "सरला तेरे श्वशुर के साथ बातचीत करके कल सन्ध्या की ट्रेन से जाना निश्चित कर आया हूँ। तुझे जो कुछ साथ ले चलना हो सब बाँधबूँधकर ठीक कर रखना।"

सरला ने पूछा, "क्या आप घर भी जायँगे।"

"हाँ, परन्तु कल ठीक समय पर आ जाऊँगा। तू तय्यार रहना। ट्रेन न छोड़नी पड़े। कुछ खा-पी लेना, ट्रेन में तो कुछ सुबीता न होगा।"

"हाँ, सो तो सब हो जायगा। आप क्या अभी ही जा रहे हैं?"

"हाँ, बेटी वहाँ सब लोगों से भेंट करनी है न? देर करने से सबसे न मिल सकूँगा, इसी लिए अभी जा रहा हूँ।"

सरला के नानाजी की जन्मभूमि यहाँ से प्रायः चार-पाँच कोस पर होगी, वहाँ पर घोड़ा-गाड़ी या इक्के पर जा सकते

है। वह सरला से और थोड़ी देर बातचीत करके इक्के पर बैठकर अपने ग्राम को चले गये।

वह हरिद्वारवास करने चले गये थे; परन्तु अपनी जन्म-भूमि का मोह नहीं छोड़ सके थे। यद्यपि हरिद्वार में मृत्यु होने पर स्वर्गलोक की प्राप्ति की आशा थी परन्तु फिर भी जन्मभूमि की श्यामल कोमल गोद की याद उन्हें बहुधा आया करती थी।

देश में जाकर खड़े होते ही वहाँ का पत्ता-पत्ता अपना कहकर ही जान पड़ता था। टूटे-फूटे एकतल्ले छोटे-से घर में जीवन बिताकर उनके पिता-पितामह स्वर्ग चले गये थे। उनकी इच्छा भी उन्हीं का अनुसरण करने की थी; परन्तु एकमात्र विधवा कन्या के आग्रह ने ही उन्हे विवश कर दिया था। उन्होंने भी सोचा कि देहत्याग तो अनिवार्य है ही, फिर गृहत्याग में ही इतने मोह की क्या आवश्यकता है! पाषाणमयी पुण्यपुरी में बैठकर भी उन्हें अपने गङ्गा-तट पर बसे हुए छोटे ग्राम को सर्व देशों का राजा कहकर गर्व अनुभव होता था।

इक्कीसवाँ परिच्छेद

ल ही सरला हरिद्वार जानेवाली है। शुक्लपक्ष की शुभ्र ज्योत्स्ना को आकाश के घने बादलो ने ढककर पाण्डुवर्ण बना लिया है।

दीघ विरहाकुल रोदन की भाँति वायु का हाहाकार बन्द घर मे भी सुनाई पड़ रहा था। दक्षिण ओरवाले बरामदे में लगे हुए फूलों के वृक्षों की छोटी-छोटी टहनियाँ पवन के वेग से इधर-उधर बिखरी पड़ रही थीं।

उस दिन सूर्यास्त के साथ-साथ ही घने काले बादल छाने शुरू हो गये थे। इसलिए घर के मनुष्यों की बातचीत बहुत कम सुनाई दे रही थी। आँधी-पानी के कारण सब लोग जल्दी-जल्दी सब कार्य समाप्त करके विश्राम करने चले गये थे।

बहुत देर तक कमरे में बैठी-बैठी सरला घबरा उठी। उठकर उसने खिड़की खोली ही थी कि ठंडी वायु के साथ-साथ पानी की बूँदों ने आकर उसके मस्तक को शीतल कर दिया। वह दो पैर पीछे हटकर किवाड़ बन्द करना चाहती थी

कि हठात् उसे स्मरण हुआ कि किवाड़ खुले रहने पर भी इस घर में किसे ठंड लगेगी? विपिन तो है ही नहीं। खुला ही न रहने दूँ, घर मे जरा ठंडी हवा ही आ रही है। उसने खिड़की खुली ही छोड़ दी।

सरला ज़मीन पर ही कारपेट पर लेट गई। इसी स्थान पर इतने दिन बिताकर जब वह अपनी माँ के पास जायगी तब उनके इतने दिनों के उच्छ्वसित अनेक प्रश्नों के वह क्या उत्तर देगी? और वह अपने दुर्भाग्य की बात कैसे छिपायेगी? यदि वह इस बात को उनसे न छिपायेगी, तो उनको कितना भारी दुःख होगा? अपनी माँ का तेजस्वी स्वभाव वह अच्छी तरह जानती थी। यह बात सुनकर वह और भी कठिन हो जायँगी।

हठात् नारंगी रंग का एक रैपर सिर से ओढ़े राजेन्द्र ने उस कमरे में प्रवेश किया। सरला को लेटे हुए देखकर वह बोला, "अरे! अभी से सो गईं क्या? तबियत तो ठीक है?"

सरला ने उठकर उत्तर दिया, "हाँ, तबियत तो ठीक ही है।"

"अच्छी बात है। परन्तु इतनी ठंड में खिड़की क्यों खोल रक्खी है? कहीं सरदी लग गई तो निमोनिया हो जाने का भय है।"

"निमोनिया मेरा कुछ बिगाड़ नहीं सकता।"

"तुम्हारा चाहे कुछ न बिगाड़ सकता हो। परन्तु........

अच्छा, वह बात जाने ही दो। क्या तुम्हारे पास थोड़ा-सा यूक्लेपट्स आयल होगा?"

"हाँ, है। क्या सरदी हो गई है?"

"हाँ, ऐसा ही मालूम पड़ता है। एक रूमाल मे थोड़ा-सा यूक्लेपट्स लगाकर दे दो तो मै यहाँ से चल दूँ। तुम्हारे ठडे कमरे मे मैं तो बरफ हुआ जा रहा हूँ। न मालूम तुम कैसे बैठी थीं।"

सरला ने उठकर खिड़की बन्द कर दी। फिर अलमारी खोलकर और यूक्लेपट्स की शीशी निकालकर रुकते-रुकते बोली, "रूमाल! तुम्हारे पास रूमाल है न?"

राजेन्द्र ने पाकेट में हाथ डालकर कहा, "नहीं, रूमाल मेरे पास नहीं है। इस समय यदि तुम्हारे पास रूमाल हो तो एक उधार दे दो।"

राजेन्द्र हँसने लगा। सरला ने उस पर ध्यान न देकर कहा, "मेरा रूमाल! अच्छा है, देती हूँ ठहरो।"

राजेन्द्र ने पूछा, "खिड़की क्यों बन्द कर दी?"

सरला ने रूमाल पर यूक्लेपट्स छिड़कते छिड़कते कहा, "तुम्हें सरदी लगती थी न? इसी लिए। यह लो रूमाल।"

रूमाल को नाक से लगाकर राजेन्द्र ने कहा, "तो तुम्हारा कल जाना ही ठीक रहा न? क्यों?"

"हाँ।"

"सन्ध्या के समय ही न ?"

"हाँ। तुम्हे इतनी खोज लेने की क्या जरूरत पड़ गई है ?"

"कुछ नहीं। ऐसे ही पूछ रहा था। मुझे क्या जरूरत होगी और .. ."

"क्या तुम्हारे 'ऐसे ही' के कोई खास माने हैं ?"

"नहीं। भला उसके माने क्या हो सकते है ?"

रूमाल सूँघते-सूँघते राजेन्द्र कमरे से बाहर चला गया। चकित दृष्टि से चारो ओर देखकर वह अपने कमरे में घुस गया। उसको यह देखकर सन्तोष हुआ कि उसकी यह दुर्बलता किसी ने नहीं देखी। उसके लिए आँधी-पानी की रात मे सरला के कमरे में जाना दुर्बलता नहीं तो क्या था ?

सरला फिर लेट गई। अकारण व्यथा से उसकी आँखों से आँसू बहने लगे। अपने हृदय को उसने रक्तवाहिनी नाड़ियों द्वारा बाँध रक्खा था। चंचल रक्त-स्रोत ने, मालूम होता है, वह बन्धन छिन्न कर डाला है।

जहाँ पर तनिक भी मन का मेल नहीं है, अयोग्या उपेक्षिता के प्रति इस प्रकार की दया दिखाने का क्या मतलब हो सकता है ? दया ! दया ! जिसके दुःख में किसी को सहानुभूति नहीं है, उसके ऊपर दया शायद क्षण भर के लिए हो जाती होगी। हो भी सकती है। सरला का मुख और उसके नेत्र रोषमय हो उठे। क्या सर्वनाश की बात है ! वह

सब खो चुकी है। खोया नहीं है यदि कुछ तो वह केवल मन की दृढ़ता है। हे दर्पहारी ईश्वर, क्या तुम उसे भी हरण कर लेना चाहते हो!

अगले दिन सुबह से लेकर दोपहर तक तो काम-काज में ही कट गया। आज घर में राजेन्द्र दिखलाई नहीं पड़ता। वह भोजन कर चुका है, यह सरला ने नौकर के मुँह मे सुना था। वह कहाँ है, यह कोई नहीं जानता।

उर्मिला यह सोचकर कि अकेली कैसे रहूँगी, सुबह से ही सरला के साथ-साथ फिर रही है। बीच-बीच मे यही कह उठती है—बताओ भाभीजी, मै अकेली कैसे रहूँगी?

सरला उसे सान्त्वना देकर कहती है—थोड़े दिन की बात ही तो है। जिस प्रकार मै रहती हूँ, उसी प्रकार तुम भी रहना।

भूपेन्द्र ने कहा, "याद रखना भाभी क्या कह रही हो। कभी हरिद्वार जाकर सब बाते भूल न जाओ।"

सरला—यदि भूल ही जाऊँ तो तुम लोग याद दिला देना। क्यो, यह काम तो कर सकोगे न?

"हाँ, यह भी तो ठीक है।"—यह कहकर भूपेन्द्र ने सिर झुका लिया।

यह देखकर सरला हँसकर बोली, "नहीं, नहीं तुम्हें याद दिलाने की जरूरत नहीं पड़ेगी। मै आप ही आ जाऊँगी। इस समय तो देखती हूँ मै भी जरूरी आदमियो मे से हो गई हूँ।"

"ओफ ओ ! यह तुम इतने दिन बाद समझ सकी हो। जब विपिन हमारे पास था तब तक नहीं समझा। अच्छा, भाभी प्रकाश बाबू की यह कैसी अकृतज्ञता है जो एक पोस्ट-कार्ड लिखकर उन्होंने विपिन की खबर तक नहीं भेजी। उनकी यही बातें देखकर तो भाई साहब नाराज़ हो जाते हैं। यदि हम लोग विपिन को न भेजते तो देखते वह कैसे ले जाते।"

"न कैसे देते ? उनका ही तो लड़का है। उनका उस पर पूरा अधिकार है।"

"कैसा अधिकार ! अधिकार होता तो नालिश करते और क्या ?"

"ऐसा करते तो लोग हमे ही पागल बनाते। चिट्ठी नहीं भेजी तो न सही। विपिन अच्छा रहे, यही तो मतलब है, बस। तब भी यदि वहाँ से कोई पत्र आये तो मुझे अवश्य सूचना दे देना। नहीं तो चिन्ता रहेगी।"

"अच्छा, सोचो यदि चिट्ठी के स्थान पर विपिन ही एकदम आ जाय तो कैसा हो ?"

सरला हँसकर बोली, "इस आकाश-कुसुम की मै कल्पना नहीं करती। मै केवल विपिन का कुशल-समाचार चाहती हूँ। बस, विपिन वहाँ खुश रहे।"

"और, यदि विपिन आ ही जाय।"

"तो जो उसे लेकर आवे उसी के साथ लौटा देना। कह

देना कि यहाँ पर उसकी माँ या नानी कोई नहीं है । कौन रक्खेगा ।"

"हाँ, युक्ति तो बहुत अच्छी है । यदि ऐसा हो सके तो उनकी बात का मुँहतोड़ उत्तर हो जाय ।"

"यदि तुम्हारी यह कल्पना कभी सच हो जाय तो यही करना । क्यों यही निश्चय रहा न ?"

"अच्छा । परन्तु मैं यदि घर पर न रहूँ और तुम्हीं लोग हो तो उन्हें क्या उत्तर दोगी, जरा यह तो बताओ । परन्तु देखो झूठ न बोलना ।"

सरला ने क्षण भर सोचकर कहा, "क्या जाने क्या उत्तर दूँगी । पहले से तो कुछ कहा नहीं जा सकता । परन्तु इसमें बेचारे विपिन का क्या दोष है ।"

भूपेन्द्र खिलखिलाकर हँस पड़ा और बोला, "बस विपिन का कुछ दोष नहीं है, यही कहने से तो सब गोलमाल मिट जाता है ।"

"गोलमाल रहने से तो क्या उसका मिट जाना अच्छा नहीं है । चाहे फिर आगे कुछ ही क्यों न हो । मैं सदा से ही गोलमाल से बहुत डरती हूँ ।"

"अच्छा, जाने दो मेरा आकाश-कुसुम तो सूखा ही जा रहा है । अब तुम आज का अपना काम-धन्धा समाप्त करो । सन्ध्या भी तो निकट आती जा रही है ।"

सन्ध्या निकट आ रही है, यह सुनकर सरला अपने

नानाजी के लिए कुछ जल-पान का प्रबन्ध करने चली गई; क्योंकि वह सन्ध्या को सन्ध्या-वन्दन के बाद ही घर से स्टेशन चल देंगे और यदि कुछ जल-पान न कर सके तो हरिद्वार पहुँचने तक भूखे ही रह जायँगे। ट्रेन में बैठकर तो वह पानी तक नहीं पीते।

परन्तु शाम को सरला के नानाजी ने आकर कहा कि उनके ग्राम के मनुष्यों ने उन्हे यथेष्ट भोजन करा दिया है। अब वह और कुछ न खायँगे, केवल सन्ध्या ही करेंगे।

सरला के आसन बिछा देने पर उसके नानाजी सन्ध्या करने बैठ गये। इस अवसर पर स्वामी से बिदा लेने के लिए उसने जानना चाहा कि वह कहाँ है।

तितल्ले की लम्बी-चौड़ी छत पर नये कमरे मे राजेन्द्र का ही डेरा रहता था। यह कमरा और छत राजेन्द्र की इच्छा-नुसार सजाये गये थे। छत पर नाना प्रकार के फूल व बेलों के गमले रक्खे थे। कमरा भाँति-भाँति के सुन्दर बहुमूल्य चित्रों और कौच, सोफा, चेयर, ईज़ीचेयर, टेबुल इत्यादि सजावट की वस्तुओं से भली भाँति सजा हुआ था।

सरला धीरे-धीरे पाँव रखती हुई छत पर गई। उसने खुली हुई खिड़की से देखा कि सन्ध्या की सुनहली धूप राजेन्द्र की शय्या पर पड़ रही है और वह उसी पर लेटा हुआ एक मोटी-सी पुस्तक पढ़ रहा है।

सरल मन से सरला स्वामी से बिदा लेने आई थी। किसी जटिल संशय का लेश भी उसके मन में न था। इसे उसने अपना अपमान न समझा था। परन्तु स्वामी के कमरे को दूर से देखते ही उसके हृदय की कोमलता और भद्रता ही उसे उसके मन का कंगालपन प्रतीत होने लगी। वह एक दीर्घ श्वास लेकर लौट गई।

लौटते-लौटते उसके मन मे जान पड़ने लगा कि उसके स्वामी की कौतूहलपूर्ण दृष्टि बाण की भाँति उसकी पीठ को भेद रही है। वह किसी भाँति साँस रोककर झटपट नीचे उतर गई।

यात्रा के समय सरला के नानाजी ने राजेन्द्र से भेट करनी चाही। जगदीश बाबू ने बल्देव से उसे बुला लाने को कहा।

बल्देव ने वापस आकर कहा, "वह तो घर मे नहीं है। मालूम होता है, कहीं घूमने चले गये है।"

"तितल्ले पर देखा है?"

"जी हाँ सरकार, वहाँ देखा है। अभी-अभी कहीं चले गये हैं।"

सरला के नानाजी ज़रा खिन्न हो गये। फिर भी उन्हे सरला को देखकर आनन्द हो रहा था। सरला परम सुखी है, इसमें उन्हें कुछ भी सन्देह नहीं था।

घर के सब लोगों की छलछलाती हुई आँखों के निकट बिदा लेकर सरला स्टेशन पर पहुँचकर ट्रेन में बैठ गई।

सरला प्लेटफार्म की ओर से दूसरी तरफवाली खिड़की के पास बैठी हुई बाहर की ओर देख रही थी। उसने देखा कि एक कुत्ता किसी जानवर की सूखी हड्डी चबा रहा है। पास ही एक झोपडी के ऊपर कुम्हड़े की बेल पर कुछ कद्दू लटक रहे है। उसी झोपड़ी की आड़ मे एक बड़े भारी आग के गोले की भाँति डूबता हुआ सूर्य दिखलाई पड़ रहा था।

खिड़की पर हाथ रक्खे हुए सरला यही सब देख रही थी कि अपने हाथ के ऊपर एक दूसरे हाथ का स्पर्श पाकर चौक पड़ी। उसने देखा कि वह हाथ उसके स्वामी का है।

सरला आश्चर्य से बोली, "तुम यहाँ कैसे?"

राजेन्द्र ने उत्तर दिया, "अवाक् क्यो हो गई? इसी ओर घूमने आया था। मैने सोचा कि तुमसे भेट करता चलूँ। घर पर तो आज भेट हो न सकी।"

सरला के मुख मे आया कि कहूँ कि तुम्हारी इस दया से मै कृतार्थ हो गई; परन्तु इस भाव को रोककर बोली, "चलते समय नानाजी ने तुम्हारी खोज की थी; परन्तु तुम घर पर न थे।"

राजेन्द्र ज़रा हँसकर बोला, "अच्छा, तुम्हीं बताओ उस घर मे अब क्या रहा। माँ भी तो अब उसमे नहीं है, जो दो-चार बातचीत कर सकूँ। ख़ाली चुपचाप ....।"

तब भी खिड़की के ऊपर सरला का हाथ राजेन्द्र के हाथ के नीचे रक्खा था। सरला ने हाथ हटाने की चेष्टा की परन्तु राजेन्द्र के निश्चेष्ट हाथ को हटा नहीं सकी।

राजेन्द्र यह समझ गया था, परन्तु उधर ध्यान न देकर उसने कहा, "हाँ, खूब याद आई। मुझे एक बात कहनी थी न तुमसे? सुनोगी?"

"यहाँ पर? अच्छा कहो सुनती हूँ; परन्तु ...।"

सरला ने एक बार फिर हाथ हटाना चाहा। राजेन्द्र उसकी व्यर्थ चेष्टा को देखकर हँस पड़ा। सरला का मुँह लाल हो गया।

प्लेटफ़ार्म के तरफवाले दरवाज़े से सरला के नानाजी गाड़ी में चढ़ते-चढ़ते राजेन्द्र को देखकर प्रसन्नमुख से बोले, "तुम हो भाई? तुम्हें देखकर बहुत आनन्द हुआ। मैं समझ रहा था कि तुमसे चलते समय भी भेंट न हो सकेगी।"

जल्दी से सरला के हाथ पर से अपना हाथ हटाकर राजेन्द्र ने उन्हे प्रणाम किया और डिब्बे से बाहर निकल आया। उधर की ओर स्वयं जगदीश बाबू खड़े थे; परन्तु उन्होने राजेन्द्र से कुछ न कहा।

राजेन्द्र एक ओर हट गया। सरला भी फिर अपनी लज्जित आँखें उधर न फेर सकी।

बाईसवाँ परिच्छेद

पुण्य भूमि हरिद्वार की एक गली के बीच में एक छोटा-सा दोमञ्जिला मकान है। इसी में सरला के नानाजी आजकल रहते हैं। इस मकान के मालिक सदैव परदेश में ही रहते थे। इसी से उन्होने अपना यह मकान किराये पर उठा दिया था। मकान के चारों ओर थोड़ा-सा खुला हुआ अहाता भी है। इसी कारण मकान यद्यपि गली में है, फिर भी उतना अँधेरा नहीं है जितना गली के मकानो में होता है।

मालूम होता है, इस अहाते में कभी छोटा-सा एक बाग़ीचा लगा होगा; क्योंकि इस समय भी उसमें सूखे हुए वृक्ष और झाड़ियों से जंगल-सा बना हुआ है। दो-एक हरसिंगार और जूही के वृक्ष हरे-भरे भी दिखाई देते हैं। एक-आधा टूटा अमरूद का पेड़ खिड़की के ठीक सामने लगा है।

सरला दोपहर को अपनी माँ को एक पुस्तक पढ़कर सुना रही थी और वह उसे एकाग्र मन से सुन रही थी और बीच-

बीच में वह एक बार सरला की ओर मुख करके देखतीं और तीक्ष्ण दृष्टि से उसके मन का भाव जानने की चेष्टा करती थीं।

परन्तु सरला भी असावधान न थी। उसने पुस्तक बन्द करके कहा, "माँ, तुम सुनती हो ही नहीं। मैं नहीं पढती।"

माँ ने कहा, "सुन तो रही हूँ। तू पढ तो सही।"

"खाक सुन रही हो, तुम तो मेरे मुख की ओर देख रही थीं।"

माँ हँसकर बोली, "अच्छा, अब नहीं देखूँगी। तू पढ़।"

सरला फिर पढ़ने लगी। क्षण भर बाद माँ ने फिर बाधा देकर कहा, "तूने अपनी देवरानी के पत्र का उत्तर दे दिया या नहीं?"

सरला ने कहा, "हाँ, दे दिया। क्यों पूछती हो?"

"कुछ नहीं। यों ही पूछती थी। पढ़।"

"तो फिर इस प्रकार पढ़ना नहीं हो सकता। दो लाइन पढ़ते न पढ़ते तुम फिर बातचीत आरम्भ कर देती हो। पहले तुम्हें जो पूछना हो पूछ लो तब फिर पढ़ूँगी।"

माँ के मन का सन्देह अभी तक दूर न हुआ था। सरला को हरिद्वार आये लगभग तीन मास हो गये थे, पर राजेन्द्र का एक भी पत्र न आया था। अपनी स्त्री की खबर लेने की उसकी इच्छा क्यों नहीं होती और सरला भी कभी भूलकर स्वामी का कोई जिक्र नहीं करती और उनके कुछ जिक्र उठाने

पर भी कोई बात छिपाने की चेष्टा करती हुई हँस देती है। यह क्या रहस्य है ?

सरला ने पुस्तक बन्द करके रख दी और कहा, "अम्मा, दोपहर तो बीत रहा है, नानाजी अभी तक नहीं लौटे। रात को वह क्या भोजन करेंगे, यह कुछ बता गये हैं या नहीं ?"

माँ ने हँसकर कहा, "तुम्हें उसकी चिन्ता करने की क्या आवश्यकता है ? तुम तो हमारे घर दो दिन की अतिथि होकर आई हो। इस चिन्ता के लिए तो मैं हूँ ही।"

सरला उठकर बोली, "मुझे अभ्यास हो गया है न ? जान पड़ता है, यह सब जिम्मेदारी मेरे ही ऊपर है। नहीं तो सब दोष मेरे ही सिर पड़ेगा। इसी से मुँह से निकल ही जाता है।"

"परन्तु तुम यहाँ यह भय क्यों करती हो ?"

सरला ऊपर चली गई और वहाँ के दो-एक छोटे-मोटे काम समाप्त करके जब नीचे उतरी तो देखा कि माँ चादर ओढकर कहीं जाने की तैयारी कर रही है।

सरला ने पूछा, "अम्मा, क्या कहीं जा रही हो ?"

"पास के ही एक घर मे जाती हूँ। सुना है उनकी बहू आई है और बहुत बीमार है। जरा उसे देख आऊँ। उन लोगो ने हमारा बहुत उपकार किया था। जब पिताजी और मै दोनो ही बीमार पड़ गये थे तो उन्हीं लोगो ने देखरेख की थी।

"तो मुझे भी लेती चलो। मैं भी देख आऊँगी।"

"पिताजी से पूछे बिना नहीं ले जा सकती। कदाचित् वह नाराज़ हो।"

सरला ने ज़िद करके कहा, "नहीं वह नाराज़ न होंगे। अच्छा, ठहरो मैं अभी उनसे पूछ आऊँ। शायद वह आ गये हैं।"

पंडितजी ऊपर कमरे मे बैठे थे। उनके सामने एक छोटी-सी चौकी पर बड़े आकार की योगवासिष्ठ की पुस्तक रक्खी थी जिसे वह पढ़ रहे थे। हठात् उन्हे पेन्सिल की आवश्यकता पड़ने पर उन्होंने मुख ऊपर उठाया और सरला को खड़ी देखकर बोले, "सामने बक्स पर पेन्सिल रक्खी है। ज़रा उठा तो दो बेटी।"

सरला ने पेन्सिल उनके हाथ में देकर कहा, "नानाजी, मेरी भी एक बात है। मै अम्मा के साथ घूमने जाना चाहती हूँ। जाऊँ?"

"घूमने जाओगी कहाँ?"

"यह तो मुझे नहीं मालूम। अम्मा कहती हैं कि जिन्होने आप लोगों की बीमारी में सहायता की थी, उन्हीं के घर जायेंगे।"

"ओहो! भोलानाथ बाबू के यहाँ। अच्छा जाओ।"

सरला ने आकर माँ से कहा, "अब चलो। मैं नानाजी से आज्ञा ले आई।"

माँ ने उसकी ओर देखकर कहा, "तो क्या इसी वेश से चलोगी? जाकर जल्दी से कपड़ा बदल आओ। मै खड़ी हूँ।"

"उहँ अब तुमने कपड़ों का झंझट निकाला"—कहती-कहती सरला कपड़े बदलने चली गई और एक सफ़ेद साड़ी, जिसका चौड़ा लाल किनारा था, पहन आई और माँ के साथ चली।

माँ ने हँसकर कहा, "देखती हूँ, कपड़ों के विषय मे तुम्हारी पसन्द पहले ही जैसी है।"

सरला समझ गई कि उसकी यह सादी सफ़ेद साड़ी माँ को पसन्द नहीं आई वह बोली, "तुम चलो भी सब ठीक है।"

घर के सामनेवाली गली को पार करके ही दूसरी ओर भोलानाथ बाबू का मकान था। बाहर बरामदे मे दासी एक आठ-दस मास के शिशु को गोद मे लिये खिला रही थी।

सरला ने बच्चे को दासी की गोद से ले लिया और घर में चली गई। बच्चा विस्मित होकर सरला का मुख देखने लगा, परन्तु रोया नहीं।

घर में पहुँचकर सरला ने देखा कि एक बड़े से दालान में पलँग पर एक तृतीया के क्षीण चन्द्रमा की भाँति एक सुन्दरी युवती लेटी हुई करवटें बदल रही है। रोग से उसका मुख पीला पड़ गया था और शरीर अत्यन्त दुर्बल हो रहा था। एक अधेड़ स्त्री पलँग के पास खड़ी हुई उसके माथे पर हाथ फेर रही थी।

सरला और उसकी माँ को देखकर अधेड़ रमणी ने आदरपूर्वक उन्हें नमस्कार करके बैठने को कहा।

पलँग पर लेटी हुई सुन्दरी ने भी उन्हे स्थिर दृष्टि से देखा और फिर इन अनजान लोगो के सामने कुछ चंचलता न दिखाई। सरला इस सुन्दरी की शय्या पर ही बैठ गई और उसके साथ बातचीत करने लगी। दो-चार बातो में ही उसने जान लिया कि अधेड़ रमणी लेटी हुई सुन्दरी की सास है।

बातचीत के विषय से ज्ञात हुआ कि जब वह सुन्दरी नैनीताल मे थी, तभी उसको ज्वर आने लगा था। डाक्टरो के आदेशानुसार वह वायु-परिवर्तन के लिए यहाँ आई है। उसके पति नैनीताल में डिपुटी मजिस्ट्रेट है। यह भी सरला जान गई।

सरला ने कहा, "आश्चर्य है कि तुम नैनीताल में थीं और हमको भी वहाँ से आये थोडे ही दिन हुए है; परन्तु वहाँ रहते समय किसी दिन भी तुम्हारा यह सुन्दर मुख नहीं दिखलाई पड़ा।"

सुन्दरी ने लज्जित होकर कहा, "वाह ! सुन्दर की एक ही कही। बड़ा सुन्दर है न !"

सरला ने उसके दोनो हाथ अपने हाथ में लेकर कहा, "इसमें क्या सन्देह है ? परन्तु दुःख की बात है कि मैने

स्वस्थ अवस्था मे तुम्हे नहीं देखा। यह मेरा दुर्भाग्य ही समझो। अच्छा, बहन तुम कितने दिन मे स्वस्थ होकर चलने-फिरने लगोगी ?"

"कितने दिन मे ? मेरा विचार है कि बनारस जाते ही मै अच्छी हो जाऊँगी। भला माँ के पास जाये बिना कहीं बीमारी अच्छी हो सकती है ?"

"बनारस ? बनारस मे क्या तुम्हारे पिता का घर है ? तब तो जान पड़ता है, बनारस सुन्दरियों की खान है।"

"क्या तुम कभी बनारस गई हो ?"

"नहीं गई तो नहीं; परन्तु वहाँ पर मेरे ममेरे श्वशुर रहते है। मैने अपने देवर ज्ञानेन्द्र के मुख से वहाँ का कुछ हाल सुना है।"

"ज्ञानेन्द्र ? वह कालीकिंकर बाबू के ही लड़के तो है न, जो वहाँ के नामी वकील है ? वही तो मेरे भाई के श्वशुर है ? उन्हीं की बात कहती हो ?"

"हाँ, हाँ। वही तो मेरे ममेरे श्वशुर है।"

सुन्दरी के मुख पर मुस्कराहट छा गई। वह शय्यागता कंकालसार रोगिणी है तब भी उसका मुख अपरिमित लावण्य से भरा है। रक्तहीनता के कारण उसका सारा शरीर संगमरमर की भाँति श्वेत हो रहा है, फिर भी उसमें इतना सौन्दर्य है कि सरला अपलक नेत्रो से उसे देखने लगी। सुन्दरी

ने हँसकर कहा, "चलो विदेश में आकर एक सगी तो मिला। यह यहाँ आते ही पहला लाभ हुआ। मै तो भाई बीमार हूँ और दूसरे यहाँ की बहू हूँ, इसलिए आ नहीं सकती परन्तु तुम्हे कभी कभी अवश्य आना पड़ा करेगा।"

"अच्छा, जब तक मै यहाँ हूँ अवश्य आती रहूँगी। मै भी घर में एक प्रकार से अकेली ही हूँ। अच्छा, यह तो बताओ मै तुम्हे क्या कहकर पुकारूँ?"

"पहले यह बताओ कि तुम मुझसे आयु में छोटी होगी या बड़ी?"

सरला ने मुस्कराकर कहा, "यदि तुम्हारा नाम मुझे अच्छा लगेगा तो छोटी होने पर भी मै तुम्हें नाम लेकर ही पुकारूँगी।"

"यदि यह बात है तो फिर क्या? लावण्य कहकर पुकारो। यही मेरा नाम है।"

नाम सुनकर सरला चौंक उठी; परन्तु क्षण भर बाद ही सावधान होकर उसने कहा, "वाह! कैसा सुन्दर नाम है। भला ऐसा सुन्दर नाम छोड़कर और कुछ और कहकर पुकारने की किसे इच्छा होगी?"

"अच्छा, तो मै तुम्हें क्या कहूँ? तुम मेरी भौजाई की भौजाई हो। इसी से, इसी से......।"

सरला ने बात काटकर कहा, " 'इसी से इसी से' न कह कर तुम भी मेरा नाम लेकर पुकारो।"

सिर हिलाकर लावण्य ने कहा, "नहीं, इसमे मुझे सुविधा न होगी। मै खड़ी नहीं हो सकती, नहीं तो तुम्हे दिखा देती कि मै तुमसे कितनी छोटी हूँ। तब आयु मे मै किस प्रकार बड़ी हो जाऊँगी ?"

"फिर भी बालक की माँ तो हो।"

"हाँ, यह तो ठीक है, परन्तु. ....अच्छी याद आई बच्चा है कहाँ। अभी तो थोड़ी देर हुई तुम्हारी गोद में था न ? मेरी बीमारी की वजह से उस बेचारे को भी कष्ट उठाना पड़ रहा है। दिन-रात रोता है। एक तो पहले ही से उसका रोना स्वभाव था और अब तो कुछ कहना ही नहीं है।"

सरला ने कहा, "तुम्हारी सास उसे दूध पिलाने ले गई है ?"

"ओ ! तब तो हो चुका। वह उन्हे तंग कर डालेगा। उसकी दासी ही उसे भली भाँति दूध पिला सकती है। अम्माजी का तो बहुत दिनो का छूटा हुआ अभ्यास है। वह तनिक देर में ही घबरा जाती है। फिर भी उन्हे पोते को खिलाने का बहुत ही शौक है।"

"तुम्हे क्या ? चाहे जो दूध पिलावे। तुम्हे अपने लड़के के पेट भरने से मतलब। तुम व्यर्थ ही लेटी-लेटी चिन्तित होती रहती हो।"

"नहीं चिन्तित तो नहीं होती, पर मेरा स्वभाव ही ऐसा बुरा

पड़ गया है कि आप तो हैरान होती ही हूँ, दूसरों को भी हैरान कर डालती हूँ।"

"ठीक ही है। तुम भी तो एक छोटी-सी लड़की हो।"

लावण्य की सास एक कटोरी में "फूड" लेकर आई। उसे देखते ही लावण्य बोली, "अम्माजी, मैं यदि उसे इस समय पीऊँगी तो मुझे उल्टी हो जायगी। अभी नहीं पीती।"

सास ने स्नेहमय स्वर से कहा, "दो की जगह चार घंटे हो चुके बेटी। यदि न पियोगी तो कमज़ोरी और भी बढ़ जायगी।"

सरला ने पूछा, "क्यों बहन तुम्हे उसे पीने मे इतनी आपत्ति काहे की है?"

"पहले ज़रा-सा चखकर देख लो। फिर कहना। यदि दूध हो तो मै पी भी लूँ। यह फूड मुझसे नहीं पिया जाता।"

सास ने कहा, "परन्तु दूध तुम्हें हज़म कहाँ होता है बेटी? नहीं तो तुम्हारे लिए दूध की कमी नहीं थी।"

सरला ने कटोरी अपने हाथ में ले ली और बोली, "अच्छा, इस समय तो मेरे हाथ से पीकर मुझे प्रसन्न कर दो तो कल सबेरे से आकर तुम्हारे साथ सारे दिन बातें करती रहूँगी।"

"ठीक कहती हो?"

"बिलकुल ठीक।"

"परन्तु बहन यह चीज़ बिलकुल ही बेस्वाद है।"

"फिर ?"

"अच्छा, लाओ दो। शायद तुम्हारे हाथ लगने से कुछ स्वादिष्ठ हो गया हो।"

सरला ने बातो ही बातो मे सब फूड लावण्य को पिला दिया। फिर कुल्ला कराकर बोली, "अब मै घर जाऊँगी। बहुत देर हो गई।"

"अच्छा, कल तो आओगी न ? यदि आशा देकर निराशा करोगी तो तुम्हे बड़ा पाप होगा।"

सरला ने हँसकर कहा, "नहीं-नहीं। हरिद्वार आकर क्या कोई पाप संचय करता है ? ऐसा घोर अपराध मै नहीं कर सकती। तुम्हारे यहाँ आकर रोज़ थोड़ा-सा पुण्य बाँध ले जाया करूँगी।"

"याद रहेगा ?"

"अच्छी तरह। निश्चिन्त रहो।"

लावण्य की सास उस समय सरला की माँ से बातें कर रही थीं। वह बोलीं, "बहन, तुम्हारी कन्या तो बहुत सुशील है। हमारी बहू तो उसे देखते ही मन्त्रमुग्ध-सी हो गई है।"

सरला ने आकर उन्हे प्रणाम किया और माँ के साथ घर लौट आई।

तेईसवाँ परिच्छेद

आठ-दस दिनों के अन्दर ही लावण्य का स्वास्थ्य सुधरने लगा। सरला भी प्रतिज्ञा-नुसार प्रायः रोज़ ही उसके यहाँ जाती थी। सरला का सदैव प्रसन्न और हँसता हुआ मुँह देखकर लावण्य समझती थी कि मेरी भाँति इसे भी किसी दुःख की आँच नहीं लगी है।

प्रतिदिन दो-ढाई बजे के लगभग सरला आकर पूछती, "क्या कर रही हो, बहन ?"

लावण्य हँसकर उत्तर देती, "अपनी बहन का इन्तिज़ार।"

"सचमुच ?"

"तब क्या झूठ समझती हो ? चौबीसों घटे बिस्तरे पर पड़ा रहना कितना बुरा लगता है, यह तुमसे कैसे कहूँ। इसी से तुम्हारे आने की आशा मे प्रहर गिना करती हूँ।"

सरला तकिये की झालर उँगलियो से हिलाते-झुलाते हुए बोली, "ओह ! तुम्हारा यह कष्ट न मालूम कौन दिन दूर होगा, मै सदा यही सोचा करती हूँ।"

"तुम यह क्या सोचती होगी? तुम्हारी तो जिस दिन ससुराल से बुलाहट आवेगी बस चलती बनोगी।"

"परन्तु यदि मैं स्वयं जाने की इच्छा न करूँ तो मुझे बलपूर्वक कोई नहीं ले जा सकता।"

"क्या कहना है? यदि स्वय पति महाशय ही बुलावेंगे तो भी मना कर देगी!"

हठात् सरला के मुख का रंग बदल गया। दूसरे ही क्षण उसने शिथिल कंठ से कहा, "परन्तु वह ऐसा कभी नहीं करते।"

"तब तो मालूम होता है वह बहुत भले आदमी है। परन्तु मेरे पति महाशय तो बहुत जिद्दी आदमी हैं। उन्हें यदि पता चल जाय कि मै अब चल फिर लेती हूँ तो फिर उसी पहाड़ पर घसीट ले जायँगे।"

सरला हँसकर चुप हो रही।

लावण्य ज़रा रुककर फिर बोली, "देखो न पिताजी ने कितनी बार मुझे काशी बुलाया है, परन्तु वह भेजना ही नहीं चाहते।"

"नहीं मुझे तो उनका कोई अपराध दिखाई नहीं देता ज़रा सोचकर तो देखो ऐसी अवस्था में कैसे भेज देते। अच्छी हो जाने पर चली जाना। परन्तु तुम्हारे चले जाने पर मुझे तो बहुत बुरा मालूम होगा।"

"और जो तुम ही कहीं पहले चली गईं तो मेरा तो यहाँ रहना ही असम्भव हो जायगा।"

"नहीं, मै दसहरे से पहले तो कदापि न जाऊँगी; क्योकि कई वर्ष मे पिता के घर आई हूँ।"

लावण्य की सास बच्चे को गोद में लिये घर में आईं। सरला ने उसे उनकी गोद से ले लिया।

बच्चे को देखकर उसे विपिन की याद हो आई। छोटेपन मे विपिन भी ठीक ऐसा ही था। ओह! उस समय वह उसे क्षण भर के लिए भी अपने से अलग न कर सकती थी। और आज उसका कुशल-समाचार जानने का भी कुछ उपाय नहीं है। वह नेत्र बन्द करके अनुभव करने लगी कि यही विपिन है।

लावण्य ने पूछा, "ऐसी गुम्म होकर क्या सोचने लगीं, बहन?"

"कुछ भी तो नहीं सोचती।"

"फिर भी कुछ तो बताओ। क्या कुछ गोपनीय बात है?"

"वह कोई ऐसी विशेष बात तो नहीं है। परन्तु तुम सुनना चाहती हो तो लो सुनो। पहले-पहले ही जब मैं ससुराल गई थी तो वहाँ उस घर के लोगों से तो अच्छी तरह परिचय था नहीं, परन्तु घर मे पाँव रखते ही जिसके साथ मेरा परिचय हुआ था वह इतना छोटा ही एक

जीव था। इसी से आज इसे गोद मे लेते ही उसकी याद आ गई। अभी तक मुझे उसकी कोई खबर नहीं मिली।"

"क्यों? क्या वह घर पर नहीं है?"

"नहीं, वह मेरी ननद का लड़का है। तीन महीने का छोड़कर उसकी माँ स्वर्ग चली गई। उसके बाद वह मेरी सास के पास ही रहता था। उनका देहान्त हो जाने पर उसके पिता उसे अपने साथ ले गये। परन्तु पहले यहाँ रहते समय वह जिस प्रकार उसकी खबर नहीं लेते थे, अब ठीक उसी प्रकार वहाँ ले जाकर उसकी खबर नहीं देते हैं।"

"परन्तु बालक तो वहाँ अवश्य अच्छी तरह होगा।"

"यह तो ठीक है, परन्तु वह शायद यह नहीं समझते कि बच्चे के लिए हमें भी कुछ चिन्ता हो सकती है।"

लावण्य की सास यह सुनकर बोली, "यह बात कोई नहीं समझता बेटी। दूसरे के बालक को पालन करने की पीड़ा की भाँति और कोई पीड़ा नहीं होती।"

सरला ने कुछ उत्तर न दिया। विपिन तो उसके लिए यन्त्रणा न था, बल्कि वह तो उसके मन का आनन्द ही था। यदि वहाँ उसे विपिन न मिलता तो शायद वह पागल हो जाती। एक दिन वह भी था जब कि उस पाषाणपुरी में केवल विपिन ही उससे स्नेह करता था। घर के और मनुष्य भी उसी के कारण थोड़ी बहुत उसकी आवश्यकता समझते थे।

सरला का मन यह सोचते-सोचते भारी हो गया। उसने कहा, "अब जाती हूँ, बहन।"

लावण्य—अभी से क्यो? पराये लड़के के लिए मालूम होता है, तुम्हारा चित्त व्याकुल हो गया है।"

"हो सकता है"—कहकर सरला ने बच्चे को गोद से उतारना चाहा, परन्तु बच्चा उतरना नहीं चाहता था। वह रोने लगा।

"अब क्या करोगी? यह तो तुम्हे जाने ही नहीं देता।"

"यह उसकी माँ की ही शरारत है।"

"वाह! मैने क्या उसे सिखा दिया है?"

"माँ के मन का इशारा बेटा खूब समझता है।"

"अच्छा, तो तुम उसे अपने साथ घर लेती जाओ।"

"नहीं, नहीं। दो दिन के लिए और तुम लोगो से प्रेम बढ़ाकर क्या होगा?"

"तो फिर थोड़ी देर और बैठ जाओ।"—यह कहकर लावण्य हँसने लगी।

सरला ने कुछ देर बाद बच्चे को बहलाकर लावण्य को दे दिया और फिर उससे नमस्कार करके चलने लगी।

लावण्य ने हँसकर कहा, "बस, आज तुम इतनी जल्दी से घर चली जा रही हो, जैसे घर में तुम्हारे दो-चार दर्जन बाल-बच्चे रोते होंगे।"

सरला हँसते-हँसते चली गई।

चौबीसवाँ परिच्छेद

पू

र्व की ओर अभी केवल थोड़ा-सा उजाला छा रहा था; परन्तु उषा के पीले ललाट की आड़ से तब भी रवि की किरणें फूटी नहीं थीं। दिवाली की प्रदीपमाला की भाँति तारकाराशि एक-एक करके धूमिल होती जा रही थी। सवेरे की मधुर वायु द्वार-द्वार पर थपकी दे रही थी। जमींदार साहब की अट्टालिका के पीछे एक पक्का तालाब था। तालाब के पश्चिम की ओर तीन-चार झुंड बाँस और केले का बाग था। तालाब के किनारे-किनारे नींबू, सन्तरे व कामिनी और हारसिंगार के फूलों की मधुर सुगन्धि से घाट भर रहा था।

घाट पर बैठे हुए अयोध्या ज़िले के निष्ठावान् ब्राह्मण पाँड़े सन्ध्या-वन्दन कर रहे थे। ग्राम का पोस्टमैन आकर कई एक चिट्ठियाँ और समाचारपत्र पाँड़े के पास रखकर बोला, "प्रणाम महाराज।"

"प्रसन्न रहो"—कहकर पाँड़ेजी ने उसका कुशल-समाचार

आओ।''—यह कहकर उसने अपने पत्र उनमे से निकालकर बाकी सब पाँड़े को दे दिये।

राजेन्द्र के यह निष्कर्म अलस दिन बहुत कठिनता से व्यतीत हो रहे है। उसके पिता का शरीर इतना खराब है और दिल की अवस्था इतनी सन्देह-जनक है कि उन्हें छोड़-कर कहीं जाना भी उचित नहीं मालूम पड़ता।

उर्मिला एक तो वैसे ही गृहस्थी की कुछ बात नहीं समझती, दूसरे अभी लड़की ही है। उसके ऊपर निर्भर रह-कर कहीं जाना नितान्त दुष्कर है।

इस समय बीच-बीच में उसे सरला की याद पड़ती है। जब तक विपिन रहा वह नहीं जा सकती थी; परन्तु अब तो वह निश्चिन्त हो गई; फिर भी यदि कोई उसे बुलाने जाय तो वह अवश्य आ जायगी। परन्तु जायगा कौन?

सरला के होने से राजेन्द्र कितना निश्चिन्त रहता था। 'शीघ्र बुला लेंगे'—कहकर ही तो पिताजी ने उसे भेजा था। परन्तु अब तो उसके बुलाने के विषय में वही सबसे अधिक निश्चिन्त है। जैसे वह कभी इस घर की कोई थी ही नहीं।

राजेन्द्र यह सब सोचते-सोचते टहल रहा था। अकस्मात् उसे अपने हाथ की चिट्ठी का स्मरण हुआ। उसने उसे खोलकर देखा। वह प्रकाश की चिट्ठी थी। उसमें विपिन की

खबर थी कि वह यहाँ से जाते ही बीमार हो गया था और अब तक बीमार ही है। बड़ा दुर्बल हो गया है। अब उसका वहाँ रखना बहुत कठिन हो गया है। वहाँ रहने से उसका बचना मुश्किल है। अतः वह उसे शीघ्र ही यहाँ भेजना चाहते है।

यदि कोई दूसरा समय होता तो राजेन्द्र इस चिट्ठी को पढ़कर क्रोध से जल उठता; परन्तु इस समय यह न हो सका। वह मन मे कहने लगा कि ठीक है। इस समय अवश्य विपिन को यहाँ ले आना चाहिए।

जगदीश बाबू इस समय मुँह-हाथ धोकर सामने शीशियों का जोड़-तोड़ लगाकर औषधि पीने का प्रबन्ध कर रहे थे। उनका खानसामा बल्देव उनकी आज्ञानुसार शीशियाँ उठाकर दे रहा था।

राजेन्द्र चिट्ठी लेकर वहीं पहुँचा। उसने देखा कि बल्देव कितना ही भूले कर रहा है और जगदीश बाबू सब नीरव सहन कर रहे है। अब उनका वह तीव्र स्वभाव नहीं रह गया है। वह अब बहुत कुछ नरम हो चला है।

राजेन्द्र ने पिता की ओर देखकर कहा, "प्रकाश का पत्र आया है।"

"ऐ! क्या कहा? किसकी चिट्ठी?"

"प्रकाश की।"

"ओह!"

जगदीश बाबू चुप हो गये। उन्होंने यह भी न पूछा कि उसमे क्या लिखा है। यह देखकर राजेन्द्र फिर बोला, विपिन बहुत बीमार है। वह उसे यहाँ भेजना चाहते है। बहुत कमजोर हो गया है।

"हूँ! कमजोर हो गया है! सो तो होता ही।"—यह कहकर और कुछ देर सोचकर जगदीश बाबू बोले, "उस चिट्ठी का उत्तर कुछ मत दो।"

राजेन्द्र आश्चर्य से बोला, "उत्तर न दूँ।"

"तुम्हे ही लिखा है न?"

"जी हाँ।"

"तो सभ्यता के अनुरोध से तुम उन्हे इतना लिखकर जता सकते हो कि उनका अनुरोध पालन करना इस समय हमारे लिए बहुत कठिन है। जिसने अब तक उस लड़के का पालन किया था, वही उसे रख सकती थी; परन्तु वह आजकल यहाँ पर नहीं है।"

राजेन्द्र चुप हो गया। उसके मन में आया कि कहूँ कि उसके आने पर विपिन को भेजने को लिख दूँ; परन्तु स्वाभाविक दुविधा से बोल न सका।

वास्तव मे जगदीश बाबू का मन अब बहुत कुछ बदल गया था। जब तक सरला पास थी वह समझा करते थे कि उसके चले जाने से न-जाने कितनी हानि होगी। इस समय

जिस प्रकार दिन कट रहे हैं, वही उन्हे ख़ूब सहन हो गये हैं। वह विचारते थे कि अकारण ही उस बेचारी को इतने दिन तक कष्ट दिया है। अब वह कुछ दिन अपनी माँ के पास सुख से रहे, इसी लिए वह आजकल सरला के विषय में कोई बात मुँह पर नहीं लाते थे। दूसरे वह यह भी देखना चाहते थे कि उनकी स्वाधीन इच्छा के विरुद्ध भी वह अपने स्थान पर अधिकार रखना चाहती है या नहीं।

राजेन्द्र दो-एक और बातें करके अपने पढ़ने के कमरे में चला गया। सबेरे की धूप क्रमशः तेज़ होती जा रही थी; परन्तु राजेन्द्र को कुछ काम न था।

वैसे तो ज़मींदारी का ही काम बहुत था, परन्तु उस काम में राजेन्द्र का मन नहीं लगता था। जिस दिन जगदीश बाबू की तबियत ज़्यादा ख़राब होती और वह काम-काज न कर सकते थे, तब ही यह सब बहीखाते राजेन्द्र के कमरे में जाते थे।

सैकड़ो बार पढ़े हुए एक अंग्रेज़ी उपन्यास के दो-चार पन्ने पढ़कर जब राजेन्द्र का मन और पढ़ने मे न लगा तो वह अस्तबल से घोड़ा मँगाकर घूमने चला गया।

सूर्यदेव उस समय बहुत कुछ ऊपर उठ गये थे। घोड़े को ऐंड़ लगाकर राजेन्द्र घर से बहुत दूर निकल आया था। तब तक ग्राम के सब लोग अपने-अपने काम-धन्धों में दत्तचित्त हो गये थे।

सड़क के किनारे पर एक पुराना काई लगा हुआ पोखरा था। उसका सब जल काई से ढक गया था। राजेन्द्र बहुत दिन से इस रास्ते पर न आया था। फिर भी उसे यह स्थान पहचाना हुआ सा मालूम पड़ा।

पास ही ग्राम की एक पुरानी पाठशाला थी। एक लड़का बाहर खेल रहा था। वह राजेन्द्र को देखते ही चिल्लाकर बोला, "अरे! ओरे, देखो तो यह पंडितजी के नातजमाई आ रहे है।"

इतनी देर बाद राजेन्द्र को होश हुआ कि विवाह करने वह एक दिन इसी गाँव में आया था। इसी से यह स्थान पह-चानो-सा मालूम होता था।

राजेन्द्र के हृदय में विचारो की तरंग उठने लगीं। एक क्षण के अन्दर ही उसे अपना कुल विवाहित जीवन स्मरण हो आया।

फूलों से भरे एक बग़ीचे के पास आकर राजेन्द्र ने घोड़े का मुँह अपने ग्राम की ओर फेरा। विचार ही विचार में वह कई मील रास्ता चल आया है, यह उसे ध्यान ही नहीं रहा था।

पच्चीसवाँ परिच्छेद

सन्ध्या के समय जगदीश बाबू को प्रकाश का एक टेलिग्राम मिला। उसमे लिखा था कि मै विपिन को लेकर रवाना हो रहा हूँ। सबेरे की ट्रेन से पहुँच जाऊँगा।

तार पाकर जगदीश बाबू कुछ देर तक गम्भीर मुख किये बैठे रहे। फिर उन्होंने बल्देव का राजेन्द्र को बुला लाने के लिए भेजा।

राजेन्द्र के आने पर उन्होंने पूछा, "तुमने प्रकाश की चिठठी का क्या उत्तर दिया था ?"

"आपने उत्तर देने को मना कर दिया था। इसी से उत्तर नहीं दिया।"

"मना किया था या बड़ी बहू यहाँ नहीं है, यह लिखने को कहा था ?"

"पहले तो मना ही किया था। इसी से उत्तर नहीं दिया।"

"अच्छा काम नहीं हुआ। उत्तर दे देते तो ठीक था। अब प्रकाश विपिन को लेकर आ रहा है। कौन उसे देखे-

भालेगा? एक तो बीमार लड़का, दूसरे कोई देखनेवाला भी तो नहीं है।"

"छोटी बहू तो है ही। इस समय वही देखे-भालेगी। अब तो विपिन उतना छोटा भी नहीं है।"

"छोटी बहू" कह कर जगदीश बाबू ज़रा हँसे और बोले, "वह उसे ज़रा भी नहीं देख सकती। बड़ा हो गया है, इसी से तो उसे और भी सावधानी से रखने की ज़रूरत है।"

राजेन्द्र ने एक बार सोचा कि कहे कि हरिद्वार से उसे बुला लीजिए; परन्तु पिता के सम्मुख यह बात कहने को उसका मुख न खुला। इसलिए वह चुप रहा।

जगदीश बाबू भी कुछ विचारने लगे। ज़रा सोचकर बोले, "मालूम पड़ता है अन्त में विपिन के लिए ही बहू को बुलाना होगा। यह एक और विपद हुई! ख़ैर, इस समय तो तुम्हें ही विपिन का भार लेना पड़ेगा।"

"मैं तो इस विषय में कुछ भी नहीं समझता परन्तु कोशिश करूँगा।"

"जब तुम उसे सम्भाल न सकोगे तो उसे फिर प्रकाश के पास पहुँचा आना। उसके लिए जो कुछ भी उचित होगा वह सब तुम्हीं करना। इन सब बातों के गोलमाल में मुझे न घसीटना। मै इन बातो के बीच मे कभी नहीं पड़ता था। अब भी मुझसे कुछ न हो सकेगा।"

वास्तव मे जगदीश बाबू बाहर के कामो में ही अपना समय व्यतीत करते थे। वह घर के किसी काम से भी सरोकार न रखते थे। गृहिणी के देहान्त के बाद भी सरला ने सब सँभाल लिया था। अब उसके चले जाने से ही फिर उनका दुर्भाग्य बढ़ गया है।

राजेन्द्र चुप होकर पिता की बातें सुन रहा था। पिता की सहायता करने में सत्य ही उसे कुछ आपत्ति न थी परन्तु माता ने इन दोनों भाइयो को इतने लाड़-प्यार से रक्खा था कि गृहस्थी के किसी काम का इन्हे तनिक भी ज्ञान न था।

उसी दिन रात को ज़मींदारी सरिश्ते का मुन्शी बहुत दिन बाद जगदीश बाबू से कड़ी फटकार खाकर राजेन्द्र के पास आकर कहने लगा, "बड़े बाबू, आज सरकार का मिज़ाज बहुत बिगड़ रहा है। वह इस प्रकार कभी नाराज़ न होते थे। सारे कमरे मे काग़ज़-पत्र फेंक दिये है!"

राजेन्द्र उस समय अपने दो-एक मित्रो के साथ बैठा ताश खेल रहा था। विरक्त होकर बोला "क्या बात थी?"

मुन्शी ने कहा, "सो तो मुझे नहीं मोलूम, एकबारगी ही मुझ पर गर्म हो पड़े।"

"मालूम होता है तुमने काम के समय वेतन बढ़ाने की

बात कही होगी। तुम जानते तो हो कि वह एक ही बात बार-बार सुनकर चिढ जाते है। समय पर आप ही उन्हे वेतन इत्यादि का ध्यान रहता है।"

"जी नहीं ! यह सब कुछ नहीं हुआ। मैने वेतन की कोई बात नहीं कही थी।"

"तब क्या वह बिना कारण ही बिगड़ गये होगे ?"

"हाँ, यही ज्ञात होता है। कमरे में जाते ही वह मुझ पर क्रोध से लाल हो गये। जान पड़ता है वह किसी कारण से आप पर ही नाराज़ है और क्रोध उतारा मुझ पर।"

"मुझ पर ? वाह ! मैने क्या किया ?"

"जी, यह मै कैसे कह सकता हूँ, परन्तु जान यही पड़ता है। देखिए उन्हे अधिक क्रोध होना अच्छा नहीं है। बीमारी बढ जाने का भय है।"

"यही तो सोच रहा हूँ। मै समझता हूँ, इसी क्रोध के कारण ही उनका दिल कमज़ोर हो गया है।"

उसी समय बल्देव ने आकर कहा, "बाबू, सरकार आपको बुलाते हैं।"

राजेन्द्र ने पूछा, "बल्देव, तुझे मालूम है बाबूजी क्यों नाराज़ हो रहे हैं ?"

बल्देव बहुत पुराना नौकर था। वह ज़रा तीखे स्वर से बोला, "सैकड़ों प्रकार की चिन्ता से ही कभी झुँझला उठते

हैं। पहले घर मे बहूरानी थीं तब भी वह इस ओर से निश्‍चिंत रहते थे। अब वह भी नहीं है।"

"तो हम लोग तो है। जरा-सा कहने से ही जो वह चाहते हो कर दे सकते हैं।"

बल्देव ने कहा, "फिर क्या? जाओ न हरिद्वार से बहूरानी को लिवा लाओ? बच्चा भी आ रहा है। इस समय तो उनका आना और भी जरूरी है।"

राजेन्द्र के मित्रगण अभी तक ताश हाथ मे लिये बैठे थे। इस बात पर वह लोग खूब जोर से हँस पड़े। उनमे से एक बोला, "वाह बल्देव खूब कहा!"

राजेन्द्र के माथे पर बल पड़ गये। फिर भी उसने ऊपरी हँसी हँसकर कहा, "परन्तु उन्होने तो मुझे यह आज्ञा नहीं दी।"

बल्देव ने राजेन्द्र को गोद खिलाकर बडा किया था। उसके सामने वह अदब-कायदे का उतना ध्यान न रखता था। इसी घर में काम करते-करते उसके बाल सफेद हो गये थे। वह बहुत विश्‍वासी और ईमानदार नौकर था। परन्तु इस समय उसने राजेन्द्र की इस बात का कुछ उत्तर न दिया और चुपचाप घर से बाहर चला गया।

साथ-साथ राजेन्द्र भी उठकर खड़ा हो गया। बोला, "जाऊँ जरा देख आऊँ क्या बात है। बाबूजी के क्रोध से मै

जितना ही भय करता हूँ उतना ही वह मेरे ऊपर पड़ता है। भूपेन्द्र सचमुच बहुत भाग्यशाली है।"

जगदीश बाबू ईज़ी चेयर पर लेटे थे। राजेन्द्र को देखकर उन्होंने पूछा, "तुम्हारे पास तो आजकल कोई काम नहीं है?"

"जी नहीं।"

"तब जाकर बिहारीलाल के पास से ज़रूरी काग़ज़-पत्र लेकर ठीक कर दो। अभी देखने की ज़रूरत है।"

"क्या वह कागज़ आज ही बिहारीलाल को लौटाने होंगे?"

"हाँ, आज ही रात तक।"

"अच्छा" कहकर राजेन्द्र पूछना चाहता था कि आप की तबियत कैसी है परन्तु कहीं वह फिर क्रोध न कर बैठें, इससे कुछ न पूछा। उन्होंने स्वयं भी कुछ न कहा परन्तु उनके मुख पर चिन्ता के चिह्न प्रकट थे। राजेन्द्र को यह देखकर बहुत दुख हुआ।

बिहारीलाल ने सब बहीखाते लाकर राजेन्द्र के सामने रक्खे। उन्हे देखते और ठीक करते-करते उसे रात के साढ़े दस बज गये।

वास्तव में दोष बिहारीलाल का ही था। उसे यह सब ज़रूरी काग़ज़ दिन के समय ही उपस्थित करने चाहिए थे; परन्तु उसने अपनी मूर्खता से उन्हे रात के समय पेश किया। इसी से जगदीश बाबू नाराज़ हुए थे।

काम पूरा करके राजेन्द्र ने एक सन्तोष की साँस लेकर कहा, "मै कभी जमींदारी का काम कर सकूँगा, यह मै पहले कल्पना भी नहीं कर सकता था। अब देखता हूँ, यदि करना पड़े तो सब कर सकता हूँ।"

बिहारीलाल ने बस्ता बाँधते-बाँधते कहा, "इतनी सारी परीक्षा पास कर लीं और इतना ज़रा-सा काम क्या भला नहीं कर सकते, बाबूजी ?"

राजेन्द्र ने हँसकर कहा, "परन्तु बाबूजी का स्वास्थ्य अच्छा रहने पर मै इस काम में कभी हाथ न लगाता।"

रात को जब राजेन्द्र बिस्तरे पर लेटा तो उसका हृदय किसी प्रकार की व्यर्थ वेदना से भर गया। दुख और चिन्ता में डूबते रहना, इसे वह बहुत बुरा समझता था, तब भी न-मालूम क्यों एक प्रकार का क्षोभ उसके यौवनस्फीत हृदय में क्लान्ति का भाव ला देता था।

उसका मन फिर उग्र विद्रोह से भर उठा। क्यो उसने ऐसा कौन-सा काम किया है ? वह तो किसी से भी कुछ नहीं माँगता। और अपना सुख ? उसी की खोज उसने कब की है ? वह जो इतने दिन से इस आनन्दहीन विश्राम-वर्जित घर के कोने में पड़ा हुआ है, इससे अधिक और क्या कर सकता है ? मनुष्य और कितना सहन कर सकता है ?

हठात् उसे सरला की याद आई। ओह! इतने दिन बाद उसने उसकी सहनशक्ति की प्रशंसा की।

सवेरे की ट्रेन से विपिन के आने की बात थी, परन्तु स्टेशन जाने के समय तक भी राजेन्द्र की आँख न खुली।

बल्देव ने आकर उसे जगाया और कहा, "सरकार ने आपको स्टेशन जाने के लिए कहा है।"

राजेन्द्र ने क्रोध से कहा, "ज़रा और देर में कहा होता! ट्रेन तो आ भी गई होगी।"—यह कहकर वह शीघ्रता से कपड़े पहनकर स्टेशन चला गया।

विपिन घर में आकर सबसे पहले जगदीश बाबू के पास पहुँचा और वहाँ जाते ही बोला, "नानाजी, मेरी मामी कहाँ हैं—मेरी मामी?"

जगदीश बाबू ने उसे प्यार करके बल्देव से कहा, "इसे अन्दर ले जा।"

विपिन बार-बार रोकर 'मामी मामी' चिल्लाने लगा।

राजेन्द्र ने उसे चुमकारकर कहा, "जाओ घर मे छोटी मामी है।"

विपिन ने ओंठ फुलाकर कहा, "छोटी मामी को होने दो। मेरी मामी कहाँ गई, बताओ।"

"वह अपनी माँ के पास घूमने गई है।"

"माँ के पास गई है। फिर नहीं आवेगी?"

"आवेंगी क्यों नहीं ?"

"मै भी उनके पास जाऊँगा ।"

"वहाँ नहीं जाया जाता ।"

"जाता है । मैं तो मामी के पास जाऊँगा ।"—यह कहकर विपिन ने यथारीति रोना आरम्भ कर दिया । बच्चों का रोना राजेन्द्र को सहन न होता था । वह विपिन को प्रकाश के पास पहुँचाकर घूमने जाने लगा ।

प्रकाश ने विपिन को रोते हुए देखकर कहा, "अब यहाँ पहुँचकर भी क्यों रोना हो रहा है ?"

राजेन्द्र ने हँसकर कहा, "यहाँ उसकी मामी खो गई ।"

"कहाँ गई हैं ?"

"हरिद्वार गई हैं—अपनी माँ के पास ।"

"ओफ़ ! तब तो अवश्य बड़ी कठिनता होगी ।" —कहकर प्रकाश चुप हो गया ।

छब्बीसवाँ परिच्छेद

तःकाल आठ बजे के समय सरला की माँ गंगास्नान करके आई और पूजा करने बैठीं। पंडितजी अभी तक स्नान करके न लौटे थे।

सरला भोजन बनाने का प्रबन्ध कर रही थी। माँ ने पूजा करने के लिये बैठने से पहले उसे कुछ काम करने को निषेध कर दिया था क्योंकि उन्हे भय था कि बहुत काम करने से कहीं कन्या बीमार न हो जाय। इस समय वह पराये घर की चीज़ है। परन्तु सरला का जी खाली बैठने में लगता ही न था।

मिथलिया दासी बाज़ार से शाक-भाजी इत्यादि लेकर लौटी और उन्हे भूमि पर रखते-रखते बोली, "आज भोलानाथ बाबू के लड़के आये हैं वही जो नैनीताल में हाकिम है।"

सरला ने कहा, "सच। क्या तुझे ठीक मालूम है?"

"हाॅ। मै अपनी आँखों से देख आई हूँ और उनकी मज़दूरनी भी कहती थी।"

तब तो वह शायद अब की बार लावण्य को भी ले जायेंगे।

"सो तो ले ही जायँगे। इसी प्रकार तुम्हें भी किसी दिन जमाई बाबू आकर लिवा ले जायँगे।"

सरला चुप हो गई। क्या यह भी कभी सम्भव है? जो इतने दिन तक एक घर में रहते हुए भी कभी उसकी खोज-ख़बर न लेते थे वह भला इतनी दूर उसे कभी लिवाने आ सकते हैं। यह केवल मृगतृष्णा के अतिरिक्त और कुछ नहीं है।

वह सिर नीचा करके तरकारी काटने लगी। उसे भय था कि कहीं अम्मा भी यही बात न पूछने लगें।

मिथलिया ने कहा, "उस घर की बहू चली जायगी। इसी लिए दीदी का मन उदास हो गया है।"

सरला हँसकर बोली, "तूने ठीक समझा है मिथलिया।" मिथलिया बात करते-करते कहने लगी, "हमारे देश में लड़कियाँ सुसराल जाते समय इतना चिल्ला-चिल्लाकर रोती हैं कि सारा मुहल्ला इकट्ठा हो जाता है।"

सरला ने मुस्कराकर कहा, "मैं तो इतना नहीं रोती।"

सरला की माँ पूजा समाप्त करके उठीं और इन लोगों के पास आकर पूछने लगीं, "तुम लोग क्या बातें कर रही हो?"

सरला कहने लगी, "अच्छा अम्मा, तुम्हीं बताओ मैं कभी सुसराल जाते समय रोती हूँ?"

माँ ने इस बात का कुछ उत्तर न दिया और बिरस मुख से वहाँ से हट गईं।

दिन का काम समाप्त करके अब दोपहर कैसे व्यतीत होगा, सरला यही सोच रही थी कि इसी समय दासी लावण्य की चिट्ठी लेकर आई। उसने लिखा था—

"प्रिय बहिन,

मैं आज रात को चली जाऊँगी। कृपा करके आज एक बार और भेंट कर जाओ तो बड़ी अनुग्रह हो। क्या जाने फिर कभी भेंट का अवसर मिले या नहीं? अस्तु।

तुम्हारी—

लावण्य प्रभा"

माँ चटाई पर लेटी रामायण पढ़ रही थी। सरला ने पास जाकर पूछा, "अम्मा, लावण्य आज चली जायगी। उसने मुझे भेंट करने को बुलाया है। जाऊँ?"

पुस्तक बन्द करके माँ ने कहा, "अरे! आज ही जा रही है। अभी तो वह बहुत कमज़ोर है।"

सरला ने कहा, "हाँ, उसने तो आज ही जाने की बात लिखी है।"

"अच्छा तो चलो मैं भी तनिक देख आऊँगी।"

दोनों लावण्य के घर पहुँचीं।

उस समय लावण्य अपनी सास के पास ही दालान में एक चौकी पर बैठी थी।

सरला ने पास जाकर कहा, "क्यों बहन, आज ही चल दीं? इतनी जल्दी?"

लावण्य सलज्ज हँसी हँसकर चुप हो गई ।

सास ने कहा, "लड़के की जिद है बेटी, नहीं तो इतने दुर्बल शरीर को लेकर परदेश जाना उचित नहीं है ।"

"कहाँ जा रहे है ?"

"पुरी । बहू के माता-पिता भी वहीं तीर्थदर्शन को गये हैं । इसी से इसे भी उन्होने बुला भेजा है ।"

"पुरी ? तब तो अवश्य प्रसन्न होने की बात है ।"

लावण्य बोली, "हाँ, प्रसन्नता तो है; परन्तु मैं इतनी जल्दी नहीं जाना चाहती थी ।"

"तब फिर दो-चार दिन और रहो न ?"

"छुट्टी तो अधिक नहीं है ।"

"यदि मार्ग में भली भाँति जा सकोगी तो पुरी बहुत ही स्वास्थ्यप्रद स्थान है ।"

"इसी कारण तो वह और भी वहाँ भेजने की जिद कर रहे हैं ।"

और दो-चार बातें करके लावण्य ने पूछा, "तुम्हें मेरी याद तो रहेगी न बहन ?"

सरला ने मुस्कराकर उत्तर दिया, "पहले जब तक मैंने तुम्हें देखा भी नहीं था तब भी चौबीसों घंटे तुम्हारा ध्यान किया करती थी, और अब तो तुम्हारे साक्षात् दर्शन हो चुके हैं ।"

लावण्य ने आश्चर्य से पूछा, "तो तुम मुझे पहले से ही जानती थीं ? कैसे ?"

सरला ने बात बदलकर कहा, "मन ही मन। ज्ञानेन्द्र इत्यादि के निकट तुम्हारी कुछ बातें सुनी थीं। इसी से।"

"तब तो इस बार और भी अधिक स्मरण किया करोगी ?"

"क्या कहूँ बहन, मन की इच्छा है।"

"क्या कहने हैं, तुम्हारी मन की इच्छा के !"

सरला की माँ ने आकर कहा, "सरला, शाम हो गई। अब घर चलो।"

सरला ने लावण्य के पुत्र को गोद में लेकर प्यार किया और बोली, "अब जाती हूँ बहन। कल इस समय न मालूम तुम कहाँ होगी।" यह कहते-कहते सरला के नेत्रों से अश्रु टपक पड़े।

लावण्य ने भी सिर नीचा करके आँचल से अपने नेत्र पोंछे।

सरला ने उसे नमस्कार किया और बच्चे को उसकी गोद में दे दिया।

लावण्य ने पास आकर सरला की माता के चरण छुए।

उन्होंने उसके सिर पर हाथ रखकर आशीर्वाद दिया और बच्चे का मुख चुम्बन करके बिदा हुई।

लावण्य सिर झुकाये खड़ी रही।

× × ×

सरला माँ के साथ घर लौट आई। वह मन ही मन अपने स्थान पर लावण्य को रखकर कल्पना की आँखों से देखने लगी। ओह कितनी सुन्दर है वह! यदि आज वह उसके स्थान पर होती तो स्वामी कितने सुखी होते और इन लोगों का गार्हस्थ्य जीवन कितना सुखमय होता!

परन्तु अब तो वह सब प्रकार से निरुपाय हो गई। अब यदि वह इस समय मर भी जाय तो भी स्वामी की आकांक्षा पूर्ण नहीं हो सकती। उसके नेत्रों में जल भर आया। ओह! उसका जीवन अकार्थ हो गया!

सरला की माता भी उस दिन सारे दिन अन्यमनस्क होकर न-जाने क्या सोचती रहीं। रात को भी सरला बहुत देर तक जागती रही।

उसके बाद जब उसकी उचटी हुई निद्रा घटे के शब्द से टूटी तब रात्रि के तीन बज रहे थे। सरला को तुरन्त ही स्मरण हुआ कि तीन बजे की ट्रेन से ही लावण्य जाने-वाली थी। उसने पासवाली खाट की ओर देखा माँ भी जाग रही थीं। उनके हाथ का पंखा कुछ-कुछ हिल रहा था।

उसने पुकारा, "अम्मा।"

उन्होंने उत्तर दिया, "हाँ।"

सरला समझ गई कि माँ के मन में भी कुछ उलट-पलट हो रहा है।

क्षण भर बाद माँ ने कहा, "सरला।"

"क्या है, अम्मा?"

"हाँ री तू अपनी सुसराल से लड़ाई-झगड़ा करके तो नहीं आई?"

सरला ने विस्मित होकर कहा, "नहीं तो।"

"तो फिर इतने दिन हो गये राजेन्द्र ने भी कोई चिट्ठी-पत्री तेरे पास नहीं भेजी। वह लोग इस प्रकार चुप हैं, इसके क्या माने है?"

"सो मै कैसे जान सकती हूँ?"

"हूँ! पिताजी तो कहते थे कि सरला के न रहने से उन लोगों का एक दिन भी नहीं चल सकता। परन्तु कहाँ? मैं तो उसका कोई लक्षण नहीं देखती।"

सरला ने देखा माँ को भुलाना सहज नहीं है। स्वामी की उपेक्षा से उन्हे सन्देह हो ही गया। अपने दुर्भाग्य के आघात को अपने हृदय पर लेकर सरला बोली, "बहुत दिन बाद आई हूँ। जान पड़ता है, इसी लिए ससुरजी ने कुछ नहीं लिखा है।

"परन्तु यदि यही बात हो तब भी चिट्ठी भेजने मे क्या दोष है? यह तो मैंने आज तक कहीं नहीं देखा। क्या मैं कुछ समझती नहीं हूँ? और राजेन्द्र! क्या वे भी एक चिट्ठी भेजकर खबर नहीं ले सकते थे?"

सरला के हृदय पर जैसे किसी ने चाबुक मार दिया हो, माँ की बात से उसे ऐसी ही वेदना होने लगी।

माँ ने फिर दुखित होकर कहा, "मालूम होता है हमको ग़रीब जानकर ही वह लोग इतनी उपेक्षा कर रहे है।"

सरला के नेत्रों और मुख से मानो अग्नि-कण निकलकर उसके ओठों को दग्ध करने लगे। माँ ने जितने दोष उनके ऊपर रक्खे हैं उनमे से एक भी अतिरिक्त नहीं है, यह वह खूब समझती थी।

माँ ने कठोर स्वर से पूछा, "चुप क्यों हो रही सरला? उत्तर क्यों नहीं देती? क्या बात है?"

सरला ने स्थिर भाव से कहा, "तुम मुझसे एक-एक करके कोई बात पूछो तो मै उसका उत्तर दूँ। इकट्ठी इतनी बातो का उत्तर नहीं दे सकती।"

इस बार माँ कठिनाई मे पड़ीं। वह ज़रा सोच करके बोलीं, "वहाँ पर सब लोग तुझसे स्नेह करते है या नहीं?"

"यह मै किस प्रकार समझ सकती हूँ?"

ससुर स्नेह करते है या नहीं? सुना था कि सास तुझे फूटी आँखो भी नहीं देख सकती थी?"

"हाँ, वह तो करते हैं। सास स्वर्ग चली गई अब उनकी बात उठाने से क्या प्रयोजन है? फिर भी जितना तुमने सुना था, उतनी कठोर तो वह नहीं थीं।"

"परन्तु मैने तो सुना था कि बहू पसन्द नहीं हुई, इसी कारण माँ-बेटे ने मिलकर बड़ा गोलमाल मचा रक्खा है ?"

"वह तो विवाह के समय की बात है। परन्तु तुम यह सब क्यो पूछ रही हो अम्मा ?"

"यों ही मन में एक प्रकार का सन्देह-सा प्रतीत होता है।"

सरला करवट लेकर लेट गई और नेत्र बन्द करके सोने की चेष्टा करने लगी। सवेरा हो गया था; परन्तु उठूँ-उठूँ करते हुए भी सरला की आँखे लग गईं।

स्वप्न मे उसे लावण्य के स्टेशन जाने का दृश्य दिखलाई पड़ने लगा। वही स्टेशन जिस पर राजेन्द्र अपने स्वभाव के विरुद्ध आकर न-जाने क्या बात कहते-कहते नहीं कह सका था। न-मालूम वह क्या कहना चाहता था ? उसके दोनो हाथों को अपने हाथो मे लेकर जैसे ही उसने कहा था कि 'अच्छा तब सुनो' उसी समय उसके नानाजी वहाँ आ गये थे और वह बात वहीं रह गई थी। यही सब वह स्वप्न मे देख रही थी।

सत्ताईसवाँ परिच्छेद

त के ग्यारह बजे का समय था। भूपेन्द्र कालिज बन्द हो जाने पर घर आया हुआ था परन्तु आज तबियत ठीक न होने के कारण वह शाम ही से पलँग पर लेटा था।

विपिन को वहीं छोड़कर प्रकाश वापस चला गया था। नौकर और दासी जितनी देर उसे बाहर रखते वह अच्छी तरह रहता और बाकी समय मे वह अपने नाना और राजेन्द्र को तंग कर डालता था।

रोग से उसका शरीर बहुत दुर्बल हो गया था। फिर भी वह रात-दिन ज़िद करके और रो-रोकर घर के मनुष्यों को हैरान कर डालता था। विरक्त होने पर भी जगदीश बाबू यह सब कुछ चुपचाप सहन करते थे। परन्तु राजेन्द्र को जब यह बाते असह्य बोध होने लगतीं तो वह विपिन के दो-एक चपत मार देता था।

बहुत समय ज़िद करने के पीछे रोने से उसे कुपथ्य देकर भी चुप कराना पड़ता था। फलस्वरूप उसकी बीमारी अभी

तक भली प्रकार अच्छी न हो सकी। घर के सब आदमी उसके कारण दुखी हो गये थे।

रात के समय वह उर्मिला के पास किसी प्रकार भी सोने को राज़ी न हुआ। अपनी दासी के साथ वह सरला के कमरे मे ही सोता था और प्रायः रोज़ रात को सोती हुई चमेली को धोखा देकर वह जगदीश बाबू के पास दौड़कर चला जाता था।

एक रात को वह इसी प्रकार भागकर जगदीश बाबू के कमरे की ओर जा रहा था। रास्ते मे अँधेरा हो रहा था। उसका शरीर भी कमज़ोर था। वह सँभल न सका और ठोकर खाकर गिर पड़ा।

राजेन्द्र सो रहा था। जगदीश बाबू की नींद धमाके के शब्द से टूट गई। उन्होंने आकर विपिन को गोद मे उठा लिया। वह इतना सहम गया था कि चिल्लाकर रो भी न सकता था।

जगदीश बाबू ने उसे अपने कमरे मे ले जाकर और बल्ब जलाकर देखा कि खून से उसका सारा मुँह और शरीर भीग गया है। शरीर पर एक कुरता भी नहीं है। सामने का एक दाँत टूट गया है।

यह देखकर जगदीश बाबू को बहुत दुख हुआ। वह मन ही मन में कहने लगे, "यह भी मेरा ही दुर्भाग्य है! परन्तु

तुमने जो पग-पग पर केवल दुख पाकर सब असहनीय सहन किया है, बेटी, यह अब मै खूब समझ रहा हूँ। घर मे और सब तो इस समय भी है परन्तु...।"

विपिन को कन्धे से लगाकर वह राजेन्द्र के दरवाजे पर आकर खटखटाने लगे। राजेन्द्र घबराकर बाहर निकल आया।

विपिन को राजेन्द्र के बिस्तरे पर बैठाकर जगदीश बाबू बोले "इसे अपने पास रक्खो और रुधिर धो डालो।" इसके आगे उन्होंने रोगी स्वभाव के अनुसार ही हाँफते-हाँफते कहा, "देखो, यदि इसी प्रकार खून बन्द हो जाय तो अच्छा है, नहीं तो कुछ और उपाय करना होगा।"

जगदीश बाबू के बनियान मे भी रक्त लग गया था। उसे उतारकर और वहीं छोड़ वह अपने कमरे मे चले गये।

कच्ची नींद टूट जाने से राजेन्द्र मन ही मन बहुत दुखी हो रहा था। वह विपिन की ओर देखकर बोला—"जैसा पाजी लड़का है, उसके अनुसार ही यह सजा मिली है। नाक में दम कर दिया दुष्ट ने।"

विपिन भय के मारे चुप हो रहा था। घर के नौकर-चाकर, दासी और उर्मिला के ऊपर चिढ़कर राजेन्द्र मन में सोच रहा था कि अब की बार वह अवश्य भूपेन्द्र के ऊपर घर सौंपकर कहीं बाहर सैर करने जायगा। इतना गोलमाल वह सहन नहीं कर सकता।

राजेन्द्र ने विपिन का मुख और शरीर धोकर पोछ दिया। कुछ क्षण बाद विपिन उसकी गोद में ही सो गया।

विपिन ठीक अपनी माँ की आकृति के अनुसार था। सोते हुए बालक की ओर देखकर राजेन्द्र का रूखा मन नरम हो गया। ओह्! मृत बहन का एक-मात्र चिह्न है।

सवेरे उठकर उर्मिला ने देखा कि विपिन अपनी शय्या पर नहीं है। उसने चमेली को जगाकर पूछा, "बच्चा कहाँ है?"

चमेली निर्विघ्न सो रही थी। आँखे मलते-मलते वह बोली, "बिस्तरे पर नहीं है?"

"नहीं तो।"

"तब कहाँ गया?"

चमेली खाट के नीचे-ऊपर, इधर-उधर देखकर बोली, "यहाँ तो कहीं दिखाई नहीं पड़ता। कैसा दुष्ट लड़का है बाबा!"

उर्मिला ने घबराकर कहा, "यह क्या बात है? तुम्हारे ही पास तो था। रात को कहाँ जा सकता है बच्चा?"

चमेली उर्मिला से ज़रा भी नहीं डरती थी। विशेषत. उसे यह दृढ विश्वास था कि जितना काम वह करती है इतना और किसी से नहीं हो सकता। उसने तुरन्त निर्भय होकर उत्तर दिया, "तो मैने क्या किया? सारी रात जागकर तो मै लड़के का पहरा दे नहीं सकती।"

उर्मिला ने क्रोधित होकर ज़ोर से कहा, "तुमने यह स्टूल खाट के पास क्यो रख दिया ? वैसे तो वह इतने ऊँचे पलँग पर से उतर नहीं सकता था !"

हठात् जगदीश बाबू उधर आये। उर्मिला भय से चुप हो गई। जगदीश बाबू की तबियत आज कुछ ज़्यादा खराब थी। इससे वह भी कुछ नहीं बोले। चुपचाप मुँह-हाथ धोने चले गये।

राजेन्द्र छोटे बालको से बहुत स्नेह न करता था। अस्तु विपिन राजेन्द्र के पास होगा, उर्मिला का यह विचार न हो सका। फिर भी उसने सोचा कि उन्हीं से विपिन की बात कहला देना चाहिए।

इतने मे ही राजेन्द्र अपने कमरे का द्वार खोलकर विपिन को गोद मे लिये हुए उतरा। उसके बरामदे मे आते ही चमेली दौड़कर विपिन को उसकी गोद से लेने के लिए लपकी।

राजेन्द्र ने उसे झिड़ककर कहा, "बस, रहने दे। तुम लोगो को अब उसे और न लेना होगा, जा हट।"

चमेली भय से हटकर खड़ी हो गई। राजेन्द्र विपिन को लिये भूपेन्द्र के कमरे मे चला गया।

भूपेन्द्र बिस्तरे पर लेटा हुआ था। राजेन्द्र ने पूछा, तेरी तबियत कैसी है भूपेन ? ज्वर उतरा या नहीं ?"

"अच्छा हूँ। ज्वर तो अब नहीं मालूम होता।"

"बाबूजी क्या उठकर इधर आये थे ?"

"नहीं तो। बल्देव कहता था कि बाबूजी ने डाक्टर को बुलाया है।"

"डाक्टर तो रोज़ ही विपिन को देखने आते हैं। आज शायद तुम्हे देखने को बुलाया होगा।"

"अब विपिन कैसा है ?"

"बहुत अच्छा है। मुँह देखो न ?"

"अरे यह तो तमाम सूजा हुआ है।"

राजेन्द्र ने इस बात का उत्तर न देकर कहा, "भूपेन, तुम्हे याद है कि सुलता एक बार मामा के घर की सीढ़ी से गिर गई थी और उसका भी एक दाँत टूट गया था।"

खूब याद है। माँ ने जब शरारत करने के लिए उसे मारना चाहा था तो नानाजी ने आकर उन्हे खूब धमकाया था।"

"हाँ, देखो इसका मुँह ठीक वैसा ही हो गया है। सामने का दाँत टूट गया है।"

"ओह ! कैसा फूला है ! किस प्रकार टूटा ?"

"सो तो मै नहीं जानता। यह लोग इसे रात को सावधानी से नहीं रखतीं। बाबूजी इसे मेरे पास इसी दशा में लाकर छोड़ गये थे।"

राजेन्द्र के मुख पर क्रोध के चिह्न देखकर भूपेन्द्र चुप हो गया।

सन्ध्या को राजेन्द्र किसी काम से जगदीश बाबू के कमरे में जा रहा था। बाहर से ही उसने सुना जगदीश बाबू अपने मित्र डाक्टर वर्मा के किसी प्रश्न के उत्तर में कह रहे थे—मूर्ख है, मूर्ख ! लिखना-पढना सीखकर भी मनुष्य मूर्ख रह सकता है, यह मै पहले नहीं जानता था। मै इसके लिए भगवान् को क्यों दोष दूँ ? मेरे घर मे जैसी लक्ष्मी की जरूरत थी, वैसी ही लक्ष्मी बहू भी मैने पाई है। परन्तु वह हतभागा मूर्ख हाथ की लक्ष्मी को पाँव से ठेल रहा है। उसे तनिक भी बुद्धि नहीं है।

राजेन्द्र समझ गया कि यह सब उसी के विषय मे कहा गया है ! माँ की मृत्यु के उपरान्त पिता के मुख से ऐसा तिरस्कार उसने आज से पहले किसी दिन नहीं पाया था।

एक दिन इस पर परिवार के हितचिन्तक डाक्टर ने राजेन्द्र को अकेले में बुलाकर कहा, "राजेन्द्र ! तुम तो बहुत समझदार लड़के हो। तुम्हारे पिता का एक तो यो ही शरीर अस्वस्थ है, दूसरे तुम उन्हे और कष्ट पहुँचा रहे हो।"

राजेन्द्र ने हतबुद्धि होकर कहा, "मै ! मैं उन्हे किस प्रकार कष्ट दे रहा हूँ ?"

"वह तो सांसारिक शान्ति की आशा केवल तुम्हीं से करते हैं। तुम्हें उचित है कि जिससे उन्हें कोई अशान्ति न हो वही काम करो।"

"यह तो ठीक है। तो मुझे क्या करना होगा, यह तो बताइए।"

"उनका विचार है कि शायद तुम बहूरानी के साथ अच्छा बर्ताव नहीं करते और उनके न रहने से घर मे तुम लोगो को कितनी असुविधा भोगनी पड़ती है, यह भी तुमसे छिपा नहीं है।"

"इस समय तो मै देखता हूँ कि सारी असुविधा केवल विपिन के ही कारण है। सो यदि बाबूजी कहे तो मै उसे उसके पिता के घर पहुँचा दूँ।"

"परन्तु उसकी अपेक्षा बहूरानी को ही हरिद्वार से जाकर क्यों नहीं ले आते, जिससे सबको ही आराम पहुँचे।"

"सो भी हो सकता है" कहकर राजेन्द्र अप्रसन्न मुख से चुप हो गया। उसके मन मे विचार हो रहा था कि बाबूजी का यह व्यर्थ का क्रोध है। मै ही क्या उसे हरिद्वार छोड़ने गया था? मै जितनी ही शान्ति से रहना चाहता हूँ, उतनी ही अशान्ति बढ़ती जाती है।

भूपेन्द्र पिता से बहुत डरता था। उसकी बहुत बार इच्छा हुई कि हरिद्वार जाकर भाभी को ले आये; परन्तु पिता की इच्छा के विरुद्ध कुछ नहीं कर सकता था। वह यह अनुभव करता था कि यदि पिता को बुलाने की इच्छा होती तो वह यह आज्ञा उसे दे सकते थे।

और भी कई दिन बीत जाने पर एक दिन भूपेन्द्र विपिन को बिस्तरे पर लिटाकर उसकी रोग-परीक्षा कर रहा था। राजेन्द्र पास एक चेयर पर बैठकर एक डाक्टरी पुस्तक के पन्ने लौट रहा था। उसने भूपेन्द्र से पूछा, "क्या देखा ?"

"जो और डाक्टर कहते हैं वही ठीक है। लिवर बहुत बढ़ गया है। छोटा बच्चा है। बहुत ज़्यादा देख-रेख की जरूरत है।"

"और ज़्यादा क्या देख-रेख होगी ?"

"कितनी हो रही है ?"

"तब तू उसे अपने साथ लखनऊ लेता जा। वहाँ नर्स का प्रबन्ध करके देखभाल करवाना।"

"मुझे यदि कुछ करने की स्वतंत्रता होती तो मै उसे एकदम भाभी के पास हरिद्वार छोड़ आता।"

"क्यो क्या तुम नहीं रख सकते। मै भी तो रखता हूँ।"

"और मेरी वहॉ पर डियुटी जो होती है, उसे कौन करेगा ?"

"अरे ! कितनी डियुटी होगी ? चौबीस घटे डियुटी थोड़े ही होती है ?"

"जी हॉ ठीक है ! यह भी क्या तुम्हारा ला कालिज है ? मेडिकल कालिज की पढ़ाई हॅसी-खेल नहीं होती।"

राजेन्द्र ने हँसकर कहा, "कौन कहता है तुमसे कष्ट करने को ? छोड़ दो ना पढ़ना ?"

"वाह ! पढ़ना क्यों छोड़ दूँ ? नौकरी न करने पर भी डाक्टरी विद्या जल मे नहीं बह जाती। अब यदि पढ़ना छोड़ दूँ तो तुम्हारी तरह घर पर ही बैठे रहना पड़ेगा ?"

"क्या बात है ! तुम तो शायद यह बहाना लेकर सदैव ही बाहर रहना चाहते हो और मै इन जमींदारी के बहीखातो को लेकर ही व्यस्त रहूँ। यह मुझसे न होगा।"

"परन्तु ऐसा न करने से काम कैसे चलेगा ? दोनो आदमी यदि बाहर रहेगे तो घर कौन देखेगा ?"

"घर देखने के माने हैं घर में कैद हो जाना। यह मुझे अब और अच्छा नहीं लगता। यदि इस गोलमाल मे कुछ और दिन रहना पड़े तो मै अवश्य पागल हो जाऊँगा।"

और भी कई दिन बहुत-सी असुविधाएँ भोगकर विपिन का सारा भार अन्त में राजेन्द्र के ऊपर ही आ पड़ा। क्रोध में आकर राजेन्द्र जो कुछ न करता था वह बाध्य होकर जगदीश बाबू को करना पड़ता था। यह देखकर राजेन्द्र सतर्क रहने लगा कि जिससे पिता को कुछ न करना पड़े।

इस बार सत्य ही राजेन्द्र बन्दी बन गया। एक तो वह वैसे ही बच्चो को पसन्द न करता था, दूसरे रोगी बच्चे के अविराम रोने धोने ने सचमुच ही उसे अत्यन्त विरक्त कर दिया। विपिन अब किसी नौकर या दासी के पास रहता ही न था।

तंग आकर राजेन्द्र ने विपिन को प्रकाश के पास पहुँचाने

का प्रस्ताव पिता के सम्मुख उपस्थित किया और उन्होंने तत्काल ही अनुमति प्रदान कर दी।

मृत सन्तान की स्मृति समझकर जगदीश बाबू विपिन को बहुत ही प्यार करते थे और उसे इस प्रकार बिदा करते हुए उन्हे अत्यन्त कष्ट हो रहा था परन्तु वह उसे मौन-भाव से सहन कर रहे थे।

विपिन गाड़ी मे बैठकर पूछने लगा, "बड़े मामा हम कहाँ जा रहे है? मामी के पास?"

"नहीं। तुम्हारे बाबूजी के पास।"

"नहीं, मै वहाँ नहीं जाऊँगा। मै तो मामी के पास जाऊँगा। मुझे वहीं ले चलो।"

विपिन के विनय-भरे वाक्य से विचलित होकर राजेन्द्र बोला—"अच्छा।"

अट्ठाईसवाँ परिच्छेद
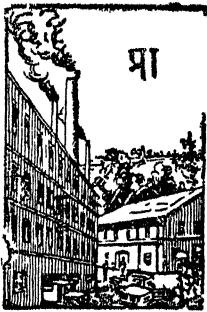
प्रात:काल आठ बज चुके थे तब भी सरला की नींद नहीं खुली। उसकी माँ बहुत देर हुई समझकर गंगा-स्नान के लिए जाने के समय उसे जगाने गईं परन्तु वह सिर मे दर्द बताकर फिर लेट गई।

"सिर में दर्द है। ज्वर तो नहीं हुआ? तुझे मै इतना मना करती रहती हूँ परन्तु तू ठंड मे काम किये बिना नहीं मानती।"

सरला फिर लेट गई। उसकी माँ उस दिन फिर गंगा नहीं जा सकीं। घर ही मे स्नान कर लिया।

सरला के नाना ने उसका हाथ देखकर कहा, "हाँ, ज्वर तो चढ़ ही आया है। जाऊँ डाक्टर को बुला लाऊँ?"

यह प्रस्ताव सुनते ही सरला ने अपनी माँ से कहा, "माताजी, तुम इतना घबरा क्यो गईं? मुझे तो ऐसा ज्वर अकसर हो जाता है और फिर अपने आप ही अच्छा हो जाता है।"

तीन-चार दिन बीत गये; परन्तु ज्वर नहीं उतरा। सरला के नाना ने चिन्तित होकर डाक्टर को बुलाया।

डाक्टर ने देखकर कहा, "ज्वर के उतरने में अभी समय लगेगा।"

सरला ने मन ही मन ईश्वर को धन्यवाद दिया कि इस प्रकार का ज्वर उसे ससुराल मे रहते समय कभी नहीं हुआ नहीं तो न-मालूम उसकी क्या दुर्दशा होती।

सात-आठ दिन बीतने पर भी जब ज्वर नहीं उतरा तो सरला के नाना ने कहा, सरला के ससुर को खबर दे दूँ, नहीं तो वे लोग पीछे हमीं को दोष देगे।"

परन्तु सरला ने कहा, "नहीं आप वहाँ खबर न भेजिए। वह लोग व्यर्थ ही हैरान होंगे। दो-चार दिन में तो अच्छी हो ही जाऊँगी।"

"फिर भी खबर देने में क्या हानि है? राजेन्द्र तो घर पर ही हैं। इच्छा होगी तो चले आयेगे।"

सरला ने मस्तक हिलाकर इसमे भी अपनी असम्मति जताई।

सरला ने मना तो कर दिया परन्तु बिस्तरे पर लेटे-लेटे उसके नेत्र बराबर दरवाज़े पर ही लगे रहते थे।

बाहर की ओर एक उजड़ा हुआ बग़ीचा था। उसमें एक हारसिंगार का वृक्ष था। सवेरे के समय उसके झड़े हुए फूलों की सुगन्धि और सुनहली धूप पड़कर उसके ऊपर जो एक दृश्य उत्पन्न करती थी, सरला उसे देखकर अकारण ही किसी गूढ़ आशा के लिए उदग्रीव रहती थी।

नानाजी का घर में आते देख कर उसकी व्याकुल दृष्टि उनके हाथ पर पड़ती थी। उनके हाथ में कोई चिट्ठी-पत्री है या नहीं? परन्तु उसकी बीमारी का हाल ससुराल भेजा गया है या नहीं, यह उसे माँ से पूछने का साहस न होता था।

जिस दिन सरला का ज्वर कम हो गया उस दिन उसकी माँ ने कहा, "अब सरला के ससुर को समाचार दे दो पिताजी। नहीं तो वह भी सोच में पड़े रहेगे।"

सरला ने व्यग्रतापूर्वक पूछा, "क्या तुमने वहाँ सत्य ही खबर भेज दी थी, माताजी?"

हाँ! तेरे ससुर ने उत्तर दिया था कि बीमारी अधिक हो तो वह स्वयं ही आवेगे।"

"तो उन्हे आज ही चिट्ठी लिखवा दो, नहीं तो वह निश्चय ही आ जायँगे।"

"तो यदि आही जायँगे तो हर्ज ही क्या है?"

"नहीं-नहीं। उनके आने का कोई काम नहीं है। उनके आने तक तो मै बिलकुल अच्छी हो जाऊँगी। फिर वह यहाँ आकर मुझे देखकर अपने मन में क्या सोचेंगे?"

नानाजी ने एक दीर्घ श्वास त्याग करके कहा, "मै आज ही उन्हे चिट्ठी लिख दूँगा। मै भी उन भद्र पुरुष को व्यर्थ कष्ट देना अच्छा नहीं समझता।"

सरला की माँ ने पूछा, "अच्छा पिताजी, सरला की बीमारी

ससुर के घर प्रथम जाने से लेकर आजतक की सब बाते उसके मस्तिष्क मे घूमने लगीं। उसके शय्यागत अलस माथे में कितनी ही भावनाएँ उत्पन्न हुईं, परन्तु अपने भाग्य-दोष के अतिरिक्त उसे और कुछ न समझ पड़ा।

हठात् सरला के मन मे आया कि यदि उस समय सास ही प्रसन्न रहतीं तो कितना अच्छा होता; परन्तु तुरन्त ही वह अपने मन को धिक्कार देने लगी। ओह! वह तो स्वर्ग गईं। उनके लिए यह मैं क्या सोच रही हूँ!

इन सब चिन्ताओं का तार टूटकर जब सरला को होश हुआ तो उसने देखा कि उसके सिर के नीचे का तकिया आँसुओ से भीग गया है। अपनी दुर्बलता पर उसे बहुत लज्जा आई। कहीं माताजी ने तो उसे इस अवस्था मे नहीं देख लिया है? मिथलिया घर में से सब बर्तन उठा ले गई है। वह भी अपने मन में क्या कहती होगी? और यदि माताजी ने कहीं देख लिया है तो उनके प्रश्नो के उत्तर देते देते हैरान होना पड़ेगा। एक तो उन्हे वैसे ही सन्देह रहता है। फिर यह बात देखकर तो वह और भी न-जाने क्या-क्या सोचेगी?

दो समूचे अनार हाथ में लिये हुए उसी समय सरला के नाना ने घर मे प्रवेश किया।

यह देखकर सरला ने कहा, "इकट्ठे दो अनार लाने की

क्या जरूरत थी, नानाजी ? कल को तो मै मूँग की दाल-रोटी खाऊँगी ।"

"तो दाल-रोटी खानें से क्या हुआ ? खाना खाने के ऊपर भी तो फल खाये जाते है । तू बहुत कमजोर हो गई है बेटी । तनिक सावधानी से रहना चाहिए ।"

सरला हँसकर बोली, "मै क्या मेहमान हूँ जो मेरी इतनी खातिर की जा रही है ? रोग से दुर्बल हो गई थी । अब अच्छी हूँ । दो दिन में ही सबल हो जाऊँगी ।"

"नहीं यह बात नही है । तू पहले से ही दुर्बल मालूम पड़ती थी । मै अनुभव करता था ।"

"तब तो मालूम होता है आपके देखने में ही कुछ अन्तर है ।"

नानाजी सिर नीचे करके क्षण भर तक कुछ सोचते रहे । फिर बोले, "बेटी, एक बात पूछता हूँ । सच-सच बताना । बतला तू मुझे अब भी उसी प्रकार प्रेम करती है, जैसे पहले किया करती थी या नही ?"

सरला ने हँसकर कहा, "ठीक पहले की तरह । परन्तु आप यह क्यों पूछते है, नानाजी ?"

नानाजी ने गम्भीरता से कहा, "नहीं हँसी की बात नहीं है । सच बता ।"

"सच नानाजी । क्या आपको विश्वास नहीं होता ?"

"तो जो मैं पूछूँ उसका ठीक-ठीक उत्तर देना ।"

"जो मुझे मालूम होगा सत्य ही कहूँगी।"

"अच्छा, बता राजेन्द्र कैसा आदमी है?"

सरला का मुख लाल हो गया। क्षण भर पहले जिन नेत्रों से आँसू बहा चुकी थी, उनमें फिर जल भर आया। हाय! इन लोगों को भी और कोई बात करने को नहीं मिलती! बार-बार वही एक बात पूछे जाते है।

"बता बेटी, तूने कुछ उत्तर नहीं दिया। अरे! तू रोने क्यों लगी?"

"नहीं नानाजी, रोती तो नहीं हूँ। रोऊँगी क्यों?"

"हाँ, यही कहो बेटी। देख, तेरे ससुर कितने आदर से तुझे अपने घर ले गये थे और इधर तेरी माँ यही कहती रहती है कि कन्या सुपात्र के हाथ नहीं पड़ी। क्यों? क्या यह बात ठीक है। मैं यही पूछना चाहता था?"

"नहीं नानाजी, यह बात नहीं है।"

"यही तो मैं भी कहता था। तो फिर तू यह बात अपनी माँ को समझा क्यों नहीं देती। वह रात-दिन इसी चिन्ता में पड़ी रहती है।"

सरला ने कुछ उत्तर न दिया।

नानाजी अब तक यह भली भाँति समझ रहे थे कि उनके इन प्रश्नों से सरला बहुत ही संकुचित हो रही है।

मिथलिया ने आकर पूछा, "क्या फिर ज्वर आ गया दीदी?"

"नहीं तो।"

"अच्छा ही है। तुम्हें चुपचाप लेटे देखकर मैंने सोचा शायद फिर बुखार न हो गया हो।"

नानाजी बेदाना रखकर चले गये। मिथलिया ने पूछा, "दीदी, बेदाने का रस निकाल दूँ?"

"नहीं, इस समय रहने दे।"

"तो वैसे ही खा लो। छील दूँ?"

"ओ बाबा! तुम लोगों ने तो मुझे एकदम छः महीने की बच्ची बना डाला। जैसे मेरे हाथ-पाँव से कुछ हो ही नहीं सकता।"

"तो फिर क्या तुम बुड्ढी हो गई हो?"

मिथलिया को घर में ही जमकर बैठते देखकर सरला ने कहा, "तुम तो यहीं अड्डा गाड़कर बैठ गईं, क्या बाहर कोई काम नहीं है?"

"बाहर बड़ी जोर से वर्षा होने लगी है। आज और कुछ काम करने का उपाय नहीं है।"—कहते-कहते वह घबराकर बोल उठी, "अरे हाँ, ऊपर सूखने को जो कपड़े डाले थे, जान पड़ता है, सब नष्ट हो गये।" सिर पर अँगौछा लपेटकर मिथला उधर दौड़ी।

सरला ने खिड़की की ओर मुख करके देखा। बाहर मूसलाधार वृष्टि हो रही थी।

उन्तीसवाँ परिच्छेद

न्ध्या को नानाजी सरला की माँ को साथ लेकर गंगाजी की आरती देखने गये थे। कमज़ोरी के कारण सरला घर पर ही रह गई थी।

थोड़ी देर तक तो मिथलिया उसके पास बैठी हुई अपने स्वामी तथा सन्तान के विषय में बातें करती रही। फिर उसके बाद वहीं दालान के एक कोने में लेट कर निश्चिन्तता की नींद मे सो गई।

सरला असमय में उसे सोते देखकर हँस कर बोली, "नींद तो इन लोगो के हुकुम की दासी है।"

परन्तु सोती हुई मिथला के कर्णकुहरों में इस बात का प्रवेश न हो सका। खिड़की के पास चटाई बिछाकर सरला बैठकर चिट्ठी लिखने लगी।

प्रथम उसने उर्मिला को उसके पत्र का उत्तर दिया और ससुर को विजया का प्रणाम निवेदन करने को लिखा और उसके बाद वह लावण्य की चिट्ठी सामने रखकर उसका उत्तर लिखने लगी।

घर के सामनेवाली गली में यात्री और बैलगाड़ी अनवरत रूप से आ जा रहे थे। दूसहरे की छुट्टियों में बहुत से विदेशी यात्रियों से गाड़ियाँ भरी हुई चली आ रही थीं। रात को भी नींद टूटने पर इक्के और गाड़ियों की घड़-घड़ सुनाई पड़ती थी।

सरला बीच-बीच में मुख उठाकर उधर देख लेती थी। इतनी गाड़ियाँ चल रही है परन्तु उसके द्वार पर एक गाड़ी भी खड़ी नहीं होती। परन्तु वह किसके आने की आशा कर रही है, यह वह स्वय नहीं जानती।

उर्मिलावाले पत्र मे पूजनीय आत्मीयों को प्रणाम लिखकर एक सबसे बड़ा और उचित प्रणाम शेप है परन्तु वह उसे किसी प्रकार प्रकाश नहीं कर सकती।

थाने के घंटे में टन-टन करके सात बजे। सरला ने उठकर लालटेन जलाई। अपनी पाली हुई मैना को अन्दर उठाकर रक्खा। अभी तक माँ और नाना घर नहीं आये थे।

घर में खूब अन्धकार हो गया था। सरला बक्स पर कागज़ बिछाकर, लालटेन रखकर फिर चिट्ठी लिखने बैठ गई।

मिथलिया की नींद टूटने की कोई आशा न देखकर सरला मन ही मन बोली, "माताजी ने कैसी अच्छी पहरेदार मेरे

पास रक्खी है। यदि मुझे कोई काटकर भी डाल जाय तो उसे पता तक न चले।"

चिट्ठी समाप्त करके उसने सब चीज़ें यथास्थान रख दीं। वह लावण्य वाली चिट्ठी को हाथ मे लेकर उलट-पुलट कर रही थी कि उसे ज्ञात हुआ कि एक बन्द गाड़ी उसी के द्वार पर आकर ठहर गई।

उसने खिड़की की झिलमिली से झाँक कर देखा परन्तु कुछ दिखाई न दिया। इतनी ही देर में द्वार के किवाड़ों पर किसी के थप-थप करने का शब्द सुनाई दिया।

सरला ने पहले तो सोचा कि शायद नानाजी लौट आये हैं; परन्तु वह तो कभी इस प्रकार ज़ोर से किवाड़ों पर धक्का नहीं देते। फिर कौन हो सकता है?

सरला ने मिथलिया को ठेलकर कहा, "उठ-उठ। देख तो बाहर कौन है। दरवाज़ा कौन खटखटा रहा है?"

मिथलिया आखें मलते-मलते बोली, "कौन है?"

"सो मैं क्या जानूँ? तू दरवाज़ा खोलकर देख तो।"

मिथलिया उठकर दरवाज़े पर गई। सरला चुपचाप बैठी रही। न-मालूम किस प्रकार की एक धड़कन उसके हृदय में होने लगी। मिथलिया हाथ में लालटेन ले गई थी। अन्धकार में बैठी सरला मन में सोच रही थी कि कौन आ सकता है।

मिथलिया के पीछे-पीछे किसी के भारी जूते का शब्द सुनकर सरला चौंक कर खड़ी हो गई। उसके सामने विपिन को कन्धे से लगाये पथश्रान्त राजेन्द्र खड़ा था। सरला के शिथिल पाँव थर-थर काँप रहे थे। वह जहाँ की तहाँ खड़ी रह गई। क्या यह स्वप्न है?

मिथलिया ने हँसकर सरला का बिछौना झाड़कर कहा, "बच्चे को इस पर लिटा दीजिए, बाबू जी।"

राजेन्द्र ने विपिन को बिस्तरे पर लिटा दिया और स्वयं भी उसी पर बैठ गया।

मिथलिया ने सरला के कान के पास मुँह ले जाकर पूछा, "यह जमाई बाबू हैं न दीदी?"

सरला ने सिर हिलाकर कहा, "हाँ।"

लालटेन यथास्थान रखकर मिथलिया सरला की माँ और नानाजी को जल्दी से बुला लाने के लिए बाहर की ओर चली गई।

राजेन्द्र ने पूछा, "क्यों क्या मुझे पहचान नहीं सकी?"

सरला ज़रा हँसकर बोली, "ऐसे एकाएक कैसे आ पहुँचे?"

राजेन्द्र पथ-श्रम से थक रहा था। जरा चिढ़कर बोला, "तो इससे क्या तुम्हारी कुछ हानि हुई है?"

सरला ने इस बात का कुछ उत्तर न देकर कहा, "अच्छा, जूता-ऊता तो खोलो।"

राजेन्द्र हँसकर बोला, "मै आज तुम्हारा अतिथि हूँ। तुम्हीं पाद्य-अर्घ्य की व्यवस्था करो।"

सरला पानी इत्यादि लेने बाहर चली गई। लौटकर उसने देखा कि स्वामी लावण्य की चिट्ठी उठाकर पढ़ रहे हैं। वह चुपचाप खड़ी रही।

चिट्ठी पर से मुख ऊपर करके राजेन्द्र ने पूछा, "यह किसकी चिट्ठी है?"

"मेरी एक सखी की।"

"काशी से आई है? तुम उन्हे पहचानती हो?"

"खाली लावण्य को ही जानती हूँ।"

"और किसी को नहीं?"

"तुम जूता खोलकर हाथ-पाँव धो डालो।"

राजेन्द्र उठ खड़ा हुआ और बोला, "पहले इसी तरह एक फ़ैसला कर लो। तब जूता खोलूँगा।"

"ठहरो—ठहरो। मेरे साथ काहे का फैसला है। मै तुमसे प्रार्थना करती हूँ, पहले जरा शान्त तो हो जाओ, फिर ।"

"हाँ, शान्त हो जाऊँगा। तुम पहले मेरी बात सुनो। तुम मुझे अपने मन में जितना नीच समझती हो, मै उतना नीच नहीं हूँ। मै अहंकारी हो सकता हूँ; परन्तु अविश्वासी नहीं हूँ....।"

अत्यन्त नम्र कोमल स्वर से सरला बोली, "यह सब इतनी

सारी बातें तुम किससे कह रहे हो और क्यों कह रहे हो ?"

"तुम्हीं से कह रहा हूँ। क्यों कह रहा हूँ, सो यह भी सुनो। मेरा धैर्य सीमा से पार निकल गया है। मैं इस समय यह पूछ रहा हूँ कि मेरा भी तुम पर कुछ अधिकार है या नहीं ? यही...."

"यह क्या कुछ नई बात है ? मैं तो नई नहीं हूँ।"

"हो भी सकती हो। जरा सोचो। भली भाँति सोचकर उत्तर दो। क्या सचमुच तुम्हें और कुछ नहीं चाहिए...."

"ना। तुम ऐसा क्यों कह रहे हो ? बैठो.... ।"

"नहीं, मैं बैठूँगा नहीं। तुम सच बात नहीं कह रही हो। फिर सोचकर कहो। मेरे सामने मुँह करके उत्तर दो।"

राजेन्द्र का गला काँप रहा था। वह सरला के अत्यन्त पास खड़ा होकर उसके मुख की ओर देखते हुए बात कर रहा था। प्रिय मधुर साँस से मुहूर्तमात्र के लिए सरला मोहित-सी हो गई। जब उसे चैतन्य हुआ तो उसने देखा कि माँ और नानाजी सामने खड़े हैं। दोनों के मुख पर इस प्रकार की आनन्द-ज्योति सरला ने पहले कभी नहीं देखी थी। विशेषतः माँ का स्नेह जैसे सहस्र धारा होकर उछला पड़ता था। वह अपने मन में सोच रही थीं कि मैंने भ्रम-वश कन्या के मन को अंट-संट पूछकर कष्ट क्यों पहुँचाया।

× × ×

एक गिलास मे गर्म दूध लेकर सरला ने विपिन को जगाया ही था कि वह चीत्कार कर उठा। वह भूखा ही सो गया था, इसलिए मुख मे थोड़ा दूध पड़ते ही वह चैतन्य हो गया। उसने विस्मित होकर पूछा, "मामा, रेलगाड़ी रुक गई क्या ?"

सरला ने विपिन को हृदय से लगाकर कहा, "तुम मुझे भूल गये विपिन ? जरा इधर तो देखो।"

विपिन ने सरला की ओर देखकर कहा, "तुम !"

"हाँ, मै ही हूँ। क्या पहचानते नहीं ?"

आनन्द से चिल्लाकर विपिन बोला, "तुम हो ! तुम्हीं हो !"

विपिन जो कुछ सामने देख रहा था, उसे उस पर सहसा विश्वास नहीं होता था।

सरला ने कहा, "हाँ, मै ही हूँ। बता तो मै कौन हूँ ?"

विपिन सीधा होकर बैठ गया। उसकी तन्द्रा भंग हो गई। बोला, "मामा कहाँ गये ?"

राजेन्द्र इस समय दूसरे कमरे मे सरला के नानाजी से बैठा हुआ बातचीत कर रहा था।

सरला ने कहा, "पहले बता तो मै कौन हूँ ?"

"तुम मेरी मामी हो।"

"ओ हो ! तूने तो पहचान लिया रे।"—कहकर सरला ने विपिन का मुख चूम लिया।

विपिन ने इधर-उधर देखकर पूछा, "यह क्या काशी है ?"

"यह तो हमारा घर है। काशी नहीं है। इसकी खोज लेने की तुझे क्या ज़रूरत पड़ी ?"

"यहाँ माँ हैं ?"

"ना बेटा ! माँ तो यहाँ नहीं है।"

"हैं।"

"यह तुमसे किसने कहा था ?"

"क्यों तुम माँ के पास ही तो गई थीं ?"

"नहीं भाई माँ के पास नहीं जाया जाता।"

"बड़े मामा तो कहते थे कि जा सकते हैं ?"

"उन्होंने तुम्हें बहका दिया होगा।"

विपिन सब दूध पी चुका था। सरला ने उसका मुँह पोंछ दिया।

विपिन बोला, "मैं कहाँ सोऊँगा, मामी ?"

क्यो, मेरे पास सोना ; इसी बिछौने पर।"

सरला के बिछौने को देखकर विपिन ओठ फुलाकर बोला, "यहाँ तो मेरा छोटा तकिया नहीं है। मैं कैसे सोऊँगा ?"

सरला कुछ विपद् में पड़ गई। उसके बाद तो घर में कोई छोटा बच्चा ही नहीं हुआ था। फिर छोटी चीजें और किसकी हो सकती थीं ?

बहुत कुछ बहला-फुसलाकर और कहानी सुनाने का

लालच देकर सरला ने विपिन को सुला दिया। स्वयं उसकी देह और मन भी थक-से गये थे और नींद आ रही थी।

यह क्या पुनर्जन्म है? हृदय की छिपी हुई उद्दाम वासना आज इस शिथिलता के अन्दर से सहस्त्र धाराओं में से होकर बाहर निकलने की चेष्टा कर रही थी।

शिथिल देह और शिथिल मन से सरला विपिन के पास लेटकर बहुत दिन बाद निश्चिन्त गहरी नींद में शीघ्र ही सो गई।

तीसवाँ परिच्छेद

पिन को लेकर जाने के एक सप्ताह बाद तक जब राजेन्द्र का कोई पत्र न आया और वह आप भी नहीं लौटा तो जगदीश बाबू और घर के और सब आदमियों की दुर्भावना का अन्त न रहा।

जगदीश बाबू नाराज़ होकर कहने लगे, "मुझे खूब मालूम है कि इस निकम्मे लड़के को कुछ भी बुद्धि नहीं है। वह कभी भी कुछ काम नहीं कर सकता।"

परन्तु मुख से यह कहने पर भी पिता का हृदय अविचलित नहीं रह सकता था। आप से आप अनेक भाँति की चिन्ताएँ घेर रही थीं। न-मालूम कहाँ चला गया? कहीं प्रकाश के घर जाकर बीमार तो नहीं पड़ गया? उन्होंने अपने नायब को बुलाकर पूछा, "तुम राजेन्द्र के मित्रों में से किसी को पहचानते हो या नहीं।"

नायब ने शंकित मन और लड़खड़ाती हुई जीभ से कहा, "मैं किसी को नहीं जानता सरकार।"

जगदीश बाबू के एक दूर के रिश्ते के भाई का पुत्र राजेन्द्र का मित्र था। उसका नाम ललित था।

जगदीश बाबू ने कहा, "अच्छा, जाकर ललित बाबू से पूछ आओ कि उसे राजेन्द्र की कोई चिट्ठी मिली है या नहीं।"

ललित को यह बात सुनकर बहुत ही आश्चर्य हुआ। बोला, "बड़े बाबू की चिट्ठी कैसी? मालूम होता है कि बड़े बाबू अब जाकर सत्य ही वैरागी हो गये है।"

नायब सिर झुकाकर हँस पड़ा। ललित ने फिर कहा, "क्यों भाई, काशी, हरिद्वार, मथुरा और वृन्दावन इन स्थानो मे भी खोज कराई है या नहीं? सुना है, सन्यासी लाग अक्सर इन्हीं स्थानो में छिपे रहते है।"

नायब घर लौटने लगा। ललित भी राजेन्द्र के विषय में भली भाँति समाचार जानने के लिए उसके साथ चला।

जगदीश बाबू तब भी बाहर बरामदे मे इजी चेयर पर बैठे थे। ललित ने पास जाकर कहा, "सुना है कि राजेन्द्र की बहुत दिन से कोई चिट्ठी-पत्री नहीं मिली।"

"हाँ! विपिन को साथ लेकर गया था। उसका रोगी शरीर था, इसी से और भी चिन्ता है।"

"प्रकाश बाबू के यहाँ गये हैं न?"

"क्या जानें? ठीक मालूम नहीं कि कहाँ गया?"

ललित ने भयभीत होकर कहा, "तो फिर प्रकाश बाबू को एक टेलीग्राम करके पूछा जाय कि ....।"

"नहीं। उसकी कोई जरूरत नहीं है।"

क़ार्तिक मास के दिन थे। प्रातःकाल से ही वर्षा हो रही थी। उर्मिला ऐसे दिन से बहुत घबराती थी। दासियाँ भंडार-घर के सामनेवाले दालान में बैठी हुई पान चबा और आपस में बातचीत कर रही थीं।

उन्हे साथ-साथ इकट्ठे बैठे देखकर उर्मिला को बहुत ईर्ष्या हो रही थी। उसकी भी इच्छा थी कि वह भी अपनी सहेलियो में इसी प्रकार अड्डा जमाकर बैठे; परन्तु दुख यही था कि घर मे उसकी साथिन होने योग्य कोई भी स्त्री न थी।

वह उदास मन से अपने कमरे के बरामदे में आकर खड़ी हो गई और ज़ोर से पड़ती हुई वृष्टि मे भीगते हुए फूलो के पौधे और फलो के वृक्षो को ध्यानपूर्वक देखने लगी।

सहसा उसने देखा कि दो घोड़ो की एक बन्द गाड़ी सामनेवाली सड़क पर से घूमती हुई इन्हीं के फाटक पर आकर रुकी और फिर धीरे-धीरे अन्दर आने लगी।

घोर वर्षा में भीगते और सिर पर कम्बल लपेटे हुए कोच-वान के हाथ से चाबुक खाते-खाते घोड़ों ने एक भाड़े की गाड़ी खींचते हुए लाकर बरसाती में खड़ी कर दी।

नौकर दरबान सब आज सुबीता समझकर आराम से बैठे गप्पें लड़ा रहे थे। फाटक पर कोई भी न था, केवल माली का लड़का शीतल आफ़िस-घर में फूल ले जा रहा था।

गाड़ी से आधा सिर निकालकर राजेन्द्र ने पुकारा, "ओ शीतल, ज़रा एक छाता तो ले आ जल्दी से।"

शीतल एकदम हर्ष से चिल्ला उठा, "सरकार, बड़े बाबू आ गये।"

एक मोटा धारीवाल का बहुमूल्य कम्बल पैरों पर डाले इज़ी चेयर पर बैठे हुए जगदीश बाबू समाचारपत्र पढ़ रहे थे। शीतल की पुकार सुनकर जल्दी से उठने लगे। उसी समय सरला ने आकर उनके चरण छूकर प्रणाम किया। यह देखकर जगदीश बाबू को बहुत आनन्द हुआ। उन्होंने प्रफुल्ल मुख से उसे आशीर्वाद देकर कहा, "तुम आ गई बेटी। प्रसन्न रहो। बड़ी दुर्बल दिखाई पड़ती हो। अरे! तुम्हारे तो सब कपड़े भीग रहे हैं। जाओ—जाओ जल्दी से घर मे जाकर इन्हे बदल डालो।"

उर्मिला ने आकर सरला को प्रणाम किया और पूछा, "मालूम होता है कि जेठजी तुम्हीं को लिवाने हरिद्वार गये थे भाभीजी?"

सरला मुस्कराकर चुप हो गई।

उपसंहार

दोपहर को राजेन्द्र अपने तितल्लेवाले कमरे में विश्राम की इच्छा से गया और वहाँ से उसने विपिन को चुपके-से अपनी बड़ी मामी को बुला लाने को भेजा।

सरला संकोचपूर्वक आकर द्वार पर खड़ी रह गई।

यह देखकर राजेन्द्र ने मुस्कराकर कहा, "आओ—आओ। भीतर आओ सरला। आज तुम्हारे पास से मुझे बहुत कुछ लेने का दावा करना है।

सरला ने लज्जित होकर सिर नीचा कर लिया। उसका मन भीतर से कह रहा था कि तुम्हारे कुछ माँगने से पहले ही मेरा समस्त भंडार तुम्हारे चरणों पर न्यौछावर हो चुका है, प्राणेश्वर!

अवनतमुखी सरला का हाथ पकड़कर राजेन्द्र ने उसे अपने पास खींच लिया और उसके गालों पर प्रेम-चिह्न अंकित करते हुए अपने हृदय पर हाथ रखकर कहा, "प्रिये, मेरे इस बिखरे हुए घर को तुम बसा दो। यह बहुत दिन से तुम्हारी प्रतीक्षा कर रहा है।"

आज सरला के सौभाग्य का क्या कहना है। उसका हृदय प्रसन्नता से उछल रहा था। उसकी आँखों में आनन्द के आँसू भर आये। पाँच वर्ष की कठिन तपस्या के उपरान्त आज उसके हृदय में भी प्रेम के अंकुर उगने लगे। मुस्कराकर उसने कहा, "परंतु यह लावण्य........।"

राजेन्द्र के उत्तर देने से पहले ही विपिन अपनी पुस्तक लेकर आ खड़ा हुआ और जोर-जोर से पढ़ने लगा—

जग में गुण आदर पाता है; रंग नहीं देखा जाता है॥

यही सरला के प्रश्न का उत्तर था।

समाप्त